MPAM-501

संगीत एवं सौन्दर्यशास्त्र I

एम0पी0ए0 संगीत – प्रथम सेमेस्टर

संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग
मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

MPAM-501

संगीत एवं सौन्दर्यशास्त्र I
एम0पी0ए0 संगीत – प्रथम सेमेस्टर
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग
मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाईपास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पीछे,
हल्द्वानी, जिला नैनीताल, पिनकोड–263139
फोन नं0 : 05946–286000/01/02
फैक्स नं0 : 05946–264232,
टोलफ्री नं0 : 18001804025
ई–मेल : **info@uou.ac.in**
वेबसाईट : **www.uou.ac.in**

MPAM-501

अध्ययन मण्डल

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो0 एच0पी0 शुक्ल (संयोजक)
निदेशक–मानविकी विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 विजय कृष्ण(सदस्य)
पूर्वविभागाध्यक्ष, संगीतविभाग,
डी0एस0बी0 कैम्पस, नैनीताल,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

डॉ0 आशा पाण्डे कृष्ण (सदस्य)
विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग,
एच0एन0बी0 गढ़वाल विश्वविद्यालय,
श्रीनगर

डॉ0 मल्लिका बैनर्जी (सदस्य)
संगीत विभाग,
इंदिरागांधी राष्ट्रीय मुक्त
विश्वविद्यालय,दिल्ली

द्विजेश उपाध्याय(सदस्य)
अकादमिक परामर्शदाता,
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन, प्रूफ रिडिंग एवं फार्मेटिंग

द्विजेश उपाध्याय
अकादमिक परामर्शदाता,
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

अशोक चन्द्र टम्टा
अकादमिक परामर्शदाता,
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

जगमोहन परगांई
अकादमिक परामर्शदाता,
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संपादन

डॉ0 विजय कृष्ण
पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 चन्द्रशेखर तिवारी
वरिष्ठ संगीतज्ञ,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 रेखासाह
पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग,
डी0एस0बी0 कैम्पस, नैनीताल
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

द्विजेश उपाध्याय
अकादमिक परामर्शदाता– संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन

1.	डॉ0 चन्द्रशेखर तिवारी	इकाई 1,2,3
2.	डॉ0 संध्या रानी	इकाई 4,5,6

कापीराइट : @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
संस्करण : सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशनवर्ष : जुलाई 2013, पुनर्प्रकाशन–जुलाई 2019, जुलाई 2020
प्रकाशक : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल–263139
ई–मेल : books@uou.ac.in

इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मेंअथवा मिमियो ग्राफी,चक मुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

MPAM-501

एम0पी0ए0 संगीत – प्रथम सेमेस्टर
संगीत एवं सौन्दर्यशास्त्र I – एम0पी0ए0एम0–501

इकाई	इकाई का नाम	पृष्ठ
इकाई 1	रस सिद्धान्त, लय व छन्द।	1–13
इकाई 2	सौन्दर्यशास्त्र भारतीय एवं पाश्चात्य संगीत के सन्दर्भ में।	14–29
इकाई 3	संगीत की व्याख्या भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार।	30–38
इकाई 4	प्राचीन काल।	39–52
इकाई 5	मध्यकाल।	53–68
इकाई 6	आधुनिक काल।	69–84

इकाई1 – रस सिद्धान्त, लय व छन्द

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 संगीत में रस
1.4 संगीत में लय
1.5 संगीत में छन्द
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रदर्शन कला–संगीत में स्नातकोत्तर, (एम0पी0ए0एम0–501) पाठ्यक्रम की पहली इकाई है। आपने पहले स्नातक स्तर पर संगीत विषय का अध्ययन किया होगा। आप संगीत के विभिन्न पहलुओं से अवगत भी चुके होंगे।

इस इकाई में रस, लय व छन्द का वर्णन किया गया है। मनुष्य स्वभाव से ही सुन्दरता की ओर आकर्षित होता है। आंखों को अच्छी लगने वाली वस्तुएं, स्पर्श में अच्छा अनुभव वाली चीज, सूंघने में सुखदायक सुगंध, सुनने में मधुर लगने वाली आवाज आदि की ओर मनुष्य आकर्षित होता है। संगीत में सौन्दर्य उत्पन्न करने में रस, लय व छन्द का विशेष महत्व है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप रस, लय व छन्द के बारे में जान सकेंगे। सौंर्दयाहेपादन के लिए रस, लय व छन्द को विस्तार से समझना आवश्यक है। संगीत में रस, लय व छन्द का क्या और कितना महत्व है यह भी आप इस इकाई के माध्यम से जान पाएंगे। हमारा विशेष अध्ययन मधुर आवाज के विषय में होगा।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि :–

- संगीत में रस से क्या अभिप्राय है और इसका क्या महत्व है?
- संगीत में लय से क्या तात्पर्य है और उसकी अनिवार्यता क्यों है?
- संगीत में छन्द का क्या महत्व है?
- संगीत में रस, छन्द व लय के महत्वपूर्ण समावेश से क्या विशेषता उत्पन्न होती है?

1.3 संगीत में रस

संगीत में सुन्दरता की वृद्धि के लिए 'रस' एक आवश्यक तत्व है। साधारणतया हम 'रस' का अनुमान कर ही भावाविभक्ति करते हैं। किसी भी भावनात्मक प्रस्तुति के लिए रसोनिष्पत्ति आवश्यक है या किसी भी सन्दर्भ में भाव के साथ 'रस' एक प्रभावी तथ्य होता है। साहित्यशास्त्र में 'रस' का विस्तृत वर्णन है।

भरत मुनि द्वारा प्रतिपादित 'नाट्यशास्त्र' में रस के स्वरूप, उसकी निष्पत्ति एवं अनुभूति के विषय में 'रंग–मंच' एवं अभिनय के माध्यम से सविस्तार वर्णन किया गया है। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र, मुख्यतः काव्य और नाट्य से सम्बद्ध है। नाट्यशाला में अभिनेता भावों की निष्पत्ति कर प्रेक्षक के हृदय में 'रस' संचार करता है और इस प्रकार सौन्दर्य और आनन्द की अनुभूति कराता है।

दृश्य–श्रव्य नाटक को सर्वोच्च कला माना गया है, जो नेत्र और कर्ण दोनों को एक साथ प्रभावित करता है। भरत कृत नाट्यशास्त्र में सबसे पहले रस सिद्धान्त विषय पर व्यवस्थित चर्चा का वर्णन मिलता है। प्राचीन समय से रस शब्द का संस्कृत भाषा में विभिन्न अर्थो में प्रयोग होता आया है। भारतीय वाड.मय में 'रस' का चार अर्थों में प्रयोग किया गया है, जो निम्न हैं :–

1. सामान्य अर्थ में आस्वाद से संबंधित, जैसे पदार्थ का 'रस'।
2. आयुर्वेद तथा उपनिषदों में प्रस्तुत अर्थ।
3. साहित्य, नाट्य आदि का 'रस'।
4. भक्ति तथा मोक्ष का 'रस'।

पदार्थ के रस के अर्थ में प्रयुक्त होने से तात्पर्य यह है कि किसी भी पदार्थ, वनस्पति आदि को निचोड़ कर उससे निकाला हुआ तत्व। यह तत्व 'रस' कहलाता है, जैसे–सन्तरें का 'रस' और इसका आस्वादन भी रस ही है। अर्थात यदि हम वेदों की बात करें तो 'सामवेद' तथा 'अथर्वेद' में इसका प्रयोग गौ–दुग्ध, मधु, सोम आदि के लिए हुआ है। उपनिषदों में इसे परम आनन्द के लिए प्रयोग किया गया है तथा महाकाव्यों की समालोचना के सन्दर्भ में इसे 'ब्रहमानन्द सहोदर' कहकर व्याख्यावित किया गया है। 'कामसूत्र' नामक ग्रन्थ में इसे रीति प्रेम आदि के लिए प्रयुक्त किया गया है। इससे यह पता चलता है कि भारतीय साहित्य में रस के सन्दर्भ में गहनता से विचार हुआ है।

वैसे भारतीय मनीषियों ने 'रस', सौन्दर्य एवं आनन्द को लगभग पर्याय माना है। रस को 'अखण्ड स्वप्रकाशानन्द', 'चिन्मय', 'ब्रहमानन्द–सहोदर' की संज्ञा दी गई है। भरत के समय तक 'रस' का अर्थ बहुत विकसित हो चुका था। इसका प्रमाण हमें इस बात से मिलता है कि भरत ने अपने ग्रन्थ में कुछ पूर्ववर्ती आचार्यों के नामों का उल्लेख किया है। लेकिन यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि पूर्ववर्ती आचार्यों के लिखे हुए ग्रन्थ आज अनुपलब्ध हैं। फलस्वरूप नाट्यशास्त्र ही सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रंथ है जिसमें रस की विवेचना की गई है।

श्लोक द्वारा –"**रसो वैसः। रसो वेसः रसह्वेवायं लब्ध्वाऽनंदी भवति।**"

अर्थात् वह रस रूप है। इसीलिए रस पाकर, जहाँ की 'रस' मिलता है, उसे प्राप्त कर मनुष्य आनन्दमग्न हो जाता है।

भारतीय संस्कृति में सौन्दर्य का लक्ष्य बिन्दु सुन्दरता न होकर 'रस' है। 'रस' आनन्द का सीधा स्रोत है तथा सभी कलाओं में व्यापत होने के कारण इसे ही लक्ष्य माना जाता है। 'रस' के महत्त्व को दर्शाते हुए भरतमुनि कहते हैंः–

''नहि रसाद्वेत कश्रिदप्यर्थः प्रवर्तते''

अर्थात 'रस' के बिना कोई बात प्रारम्भ नहीं होती। 'रस' के विषय में भरत मुनि खुद प्रश्न करते हैं—'रस' इति का पदार्थ अर्थात रस क्या पदार्थ है? इसके उत्तर में भरतमुनि कहते हैं —'आस्वद्यात्वात्' अर्थात 'रस' आस्वाद्य पदार्थ है। अर्थात् यदि संगीत द्वारा प्राप्त अनुभूति की बात करें तो इसका सम्बन्ध भाव तथा आनन्द से है और आनन्द रस का मूर्त रूप है।

<u>रस निष्पत्ति</u> — रस निष्पत्ति के बारे में भरत कहते हैं —

'' विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पतिः''

अर्थात विभाव, अनुभाव, व्यभिचारि भावों के संयोग से ही 'रस' निष्पत्ति होती है। भरत मुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में चार पक्षों पर मुख्यतः विचार किया है :—

1. अभिनय 2.नृत्य 3. संगीत 4.'रस'

इसमें प्रथम तीन साधन मात्र हैं, जिनके माध्यम से चौथे की अनुभूति होती है, जिसे रसानुभूति कहा गया है। नाट्य का अंतिम लक्ष्य चर्मोत्कर्ष रस की निष्पत्ति और सहृदय द्वारा उसका आस्वादन है। अर्थात भरत मुनि ने मनोवैज्ञानिक आधार पर भाषा का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि भिन्न—भिन्न रस के अनुभव तथा आस्वाद के लिए भिन्न—भिन्न प्रकृति की आवश्यकता होती है। एक ही प्रकृति विभिन्न रसों का आस्वाद नहीं ले सकती। जैसे—वीर प्रकृति, भयानक से साम्य नहीं रखती।

अभिनय को भरत मुनि ने तीन प्रकार का बताया है :—

1.आंगिक 2. वाचिक 3. सात्विक

आंगिक अभिनय शरीर के अंग—प्रत्यंगों के हिलाने डुलाने में, वाचिक अभिनय वाणी के प्रभावशाली उच्चारण में, सात्विक अभिनय मस्तिष्क में भरे भावों की अभिव्यक्ति में निहित है जिसकी प्राप्ति, शरीर में उत्पन्न विशिष्ट लक्षणों से प्रतीत होती है। नाट्यशास्त्र में भरत ने कुल 49 भावों का विवेचन किया है, जिनमें से 8 स्थायी, 33 संचारी और 8 सात्विक भाव शामिल हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने विभाव, अनुभाव आदि के विषय में कोई विवेचना नहीं की है।

भरत ने भाव और रस पर परस्पर शरीर और आत्मा का संबंध मानते हुए लिखा है —

'न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्णितः'

रस की व्याख्या करते हुए भरत मुनि कहते हैं कि रस नाट्य उपकरणों द्वारा प्रस्तुत एक भावमूलक कलात्मक अनुभूति है। रस का केन्द्र रंगमंच है। भाव रस नहीं उसका आधार है। उन्होंने लिखा है कि 'विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से स्थायी रस उत्पन्न होता है।

'आत्माभिन्मनं भावों' — अर्थात आत्मा का अभिनय भाव है। भाव ही आत्मा चैतन्य से विश्रान्ति पा जाने पर रस होते हैं। रस्सी को सर्प समझने से निश्चित ही भय लगता है किन्तु जान—बूझकर रस्सी को सर्प के रूप में देखने से मनोरंजन होता है, भय नहीं। रस सिद्धान्त मूलतः नाटक के दृष्टिकोण से प्रतिपादित किया गया था और वह प्रत्यक्षतः भाव तत्त्व पर ही सर्वाधिक जोर देता है।

रस निष्पति तथा संयोग को लेकर विद्वानों एवं आचार्यों में मतभेद हुआ जिसके फलस्वरूप चार दृष्टिकोण हुए :—

1. भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद – भट्टलोल्लट ने संयोग और निष्पत्ति पर व्याख्या करते हुए लिखा है कि निष्पत्ति का अर्थ उत्पत्ति से लिया है, अतः उनका दृष्टिकोण उत्पत्तिवाद कहलाता है। अर्थात् संयोग का तात्पर्य है मेल तथा निष्पत्ति का अर्थ है उत्पत्ति, अतः इनका दृष्टिकोण उत्पत्तिवाद कहलाता है। स्थायी भाव के साथ विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का संयोग होने के कारण रस की निष्पत्ति होती है।

डा0 गणपतिचन्द्र गुप्त ने लस्सी का उत्तम दृष्टान्त दिया है, जिसे रस–निष्पति की क्रिया पर लागू करते हुए कहा जा सकता है कि दही विभाव है जिसका लस्सी रूप से उत्पादक–उत्पाद्य सम्बन्ध है। पानी, बर्फ, चीनी आदि सन्चारी है, जिनका लस्सी रूप से पोषण सम्बन्ध है तथा झाग अनुभाव है, जो लस्सी रूपी रस को व्यक्त या सूचित करता है।

2. आचार्य शंकुक का अनुकृतिवाद – इनके मतानुसार रस नाटक में नहीं होते हैं। जब कोई कलाकार शिक्षा तथा कठिन अभ्यास के उपरान्त नाट्य में अभिनय करता है तो प्रेक्षक को पता होता है कि कलाकार द्वारा किया जा रहा अभिनय कृत्रिम है, फिर भी नाटक में प्रस्तुत विभाव आदि के आधार पर ही लोगों को रस की प्राप्ति होती है। अर्थात शंकुक, रस की उत्पत्ति न मानकर केवल अनुभूति मानते हैं।

3. भट्टनायक का भुक्तिवाद – इनके मत के अनुसार ना ही रस की उत्पति होती है, ना ही अभिव्यक्ति और ना ही प्रतीति। नाटक में प्रस्तुत अभिनय के कारण सामाजिक (दर्शक/श्रोता) के अंतः भावों का साधारणीकरण होने से रस का भोग किया जाता है।

4. अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद – इनके मत के अनुसार कलाकार के द्वारा प्रस्तुत भावों से प्रेक्षक की मानसिक स्थिति के साधारणीकरण होने से प्रेक्षक के मन में उठने वाले भावों को कलाकार के द्वारा प्रस्तुत भावों से तादात्मय होने के कारण रस की प्राप्ति होती है। कला के आस्वादन के समय व्यक्ति निजी सुख–दुःख के भावों एवं चिन्ताओं से मुक्ति पा लेता है, जिस कारण कलाकार द्वारा प्रस्तुत अनुभूतियों को प्रेक्षक अपने भावों में अभिव्यक्त देखता है। यह अभिव्यक्ति ही रसानुभूति होती है जहां प्रेक्षक एवं कलाकार की मानसिक स्थिति में कोई दूरी नहीं रहती अतः दोनों ही तादात्मय की स्थिति में होते हैं।

अभिनव गुप्त के ग्रन्थों 'अभिनव भारती', 'ध्वन्यालोकलोचन' तथा काव्य प्रकाश में ही इन चारों दृष्टिकोणों का वर्णन मिलता है। अन्य तीन आचार्यों के मूल ग्रन्थ आज अनुपलब्ध हैं।

रस के अवयव – रस सिद्धांत के प्रवर्तक 'भरत' ने भावनाओं से संबंधित रस के अवयवों यथा स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और व्यभिचाारी(संचारी) भावों की चर्चा की है।

भाव – रस का आस्वाद भाव के माध्यम से प्रेषक के हृदय में होता है। रस तथा भाव में परस्पर आत्मा तथा परमात्मा का सम्बंध है। भरत मुनि की सुप्रसिद्ध उक्ति है –''भावगति इतिभाव'' अर्थात भाव वही है, जिसकी भावना हो। अतः रसानुभूति के अन्तर्गत भावों के विभिन्न पक्षों पर विचार किया जाता है।

''विभावेनारूतों योऽर्थो हानुभावेस्तु गम्यते।
वागडसतवाभिनर्यः सं भाव इति संज्ञित''।।

अर्थात–भाव वह अर्थ है जो विभावों द्वारा निष्पन्न होता है और वाचिक, आंगिक तथा सात्त्विक भावों के अभिनय से युक्त होता है। मूलतः भावों को दो प्रकार का माना गया है :–

1.स्थायी या देर तक ठहरने वाला।

2.'संचारी' या जो पल भर में भड़क उठता है और पल भर में ठंडा पड जाता है। इसे व्यभिचारी भाव भी कहते हैं।

<u>स्थायी भाव</u> – किसी अन्य भाव से न दबने वाला, उल्टा सभी को समेट अपने में आत्मसात करने वाला, काल तक ठहरने वाला 'स्थायी भाव' कहा जाता है। भरत ने इसकी व्याख्या स्पष्ट रूप से नहीं की है, अपितु भरत इसकी महत्ता को बताते हुए कहते हैं कि जैसे मनुष्यों में राजा और ऋषियों में गुरू की प्रतिष्ठा होती है, उसी प्रकार सभी भावों में स्थायी भाव श्रेष्ठ तथा प्रतिष्ठित होते हैं।

सामान्यतः 9 भाव कहे गए हैं, लेकिन भरत ने केवल 'आठ' स्थायी भाव और आठ ही रस माने हैं।

''श्रृंगारहास्यकरूणरौद्रवीरभयानकाः।
वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।।''

अर्थात–नाटक में रस आठ हैं–श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स तथा अद्भुत। स्थायी भावों और रसों का पारस्परिक संबंध इस प्रकार है:–

स्थायी भाव	**रस**
रति	श्रृंगार
हास	हास्य
शोक	करूण
क्रोध	रौद्र
उत्साह	वीर
भय	भयानक
जुगुप्सा	वीभत्स
विस्मय	अद्भुत

इन आठ में से केवल चार ही उन्होंने प्रमुख माने हैं। श्रृंगार, करूण, वीर और वीभत्स रस जिनसे रति, शोक, उत्साह व जुगुप्साभाव की अनुभूति होती है।

<u>विभाव</u> – भरत विभाव की व्याख्या इस प्रकार करते हैं :–

''बहवोऽर्था विभाव्यन्ते वांगगाभिनयाश्रयाः।
अनेन अस्मात्तेनायं विभाव इति संज्ञितः''।।

अर्थात –जो वाणी, अंग तथा अभिनय के द्वारा अनेक अर्थों का बोध कराते हैं, वे विभाव कहलाते हैं। अतः नाटक में जिन साधनों तथा कारणों के द्वारा भाव का बोध होता है अथवा जिन परिस्थितियों द्वारा बोध की प्रक्रिया संभव होती है, विभाव कहलाती है।

विभाव को भाव का कारण माना गया है क्योंकि इनके द्वारा आंगिक, वाचिक तथा सात्विक अभिनय का स्पष्ट ज्ञान होता है। विभाव के दो रूप होते हैं :–

1. आलम्बन
2. उद्दीपन

हृदय में भावों का संचार किसी बाह्य वस्तु या दृश्य द्वारा मस्तिष्क के अन्दर उठी कल्पना से होता है। भावों का उत्सर्ग इन पर आधारित होने से इन्हें आलम्बन कहा जाता है। जैसे – काले सांप को देखकर भय लगता है तो सांप यहाँ आलम्बन हुआ किन्तु सांप को जब बीन बजाते हुए सपेरे के सामने झूमते हुए देखते हैं तो भय नही बल्कि उसके विपरीत हर्ष होता है। अतः स्पष्ट है कि आलम्बन अनुकूल परिस्थितियों में ही नहीं ब्लकि प्रतिकूल दशाओं में भी भावों को उद्वेलित करने में सहायक होता है, इसलिए इन्हें उद्दीपन कहा जाता है। यदि आग का अंगारा आलम्बन है

तो प्रज्जवलित रखने वाली हवा के झोंके, उद्दीपन हैं। अर्थात् जिस प्रकार अनुकूल वातावरण, आलम्बन पर आश्रित भावों का उद्दीपन करने में सहायक होता है ठीक वैसे ही प्रतिकूल वातावरण भावों को सुषुप्त बना देता है।

जैसे झील की चाँदनी में नायिका के साथ नौका विहार अनुकूल उद्दीपन–आलम्बन का दृष्टान्त है, किन्तु शमशान में प्रेयसी का संग सर्वथा प्रतिकूल है। यहाँ आलम्बन और उद्दीपन में सामंजस्य नहीं है।

<u>अनुभाव</u> – अर्थात् विभाव के दोनों पक्ष – आलम्बन और उद्दीपन मिलकर जिसके हृदय में भाव उद्वेलित करते हैं, उसे आश्रय कहा जाता है। आश्रय के हृदय में भावों का संचार होने पर उसकी शारीरिक एवं मानसिक स्थिति में कुछ विशिष्ट लक्षण नजर आते हैं। जैसे क्रोध आने पर त्योरियों का चढ़ जाना, शोक से चेहरे पर उदासी छा जाना, करूण भाव से विहवल होने पर आँसू आना आदि इन विशिष्ट लक्षणों को अनुभाव कहते हैं। अर्थात चित्त में जो भाव उठते हैं उनका मुख मण्डल की मुद्राओं से संकेत मिलता है।

अनुभाव मानसिक दशा को प्रकट करते हैं। भरत ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है – जिस आंगिक, वाचिक एवं सात्त्विक अभिनयों द्वारा दर्शक को रस विशेष की अनुभूति का बोध होता है, अनुभाव कहलाता है।

रस सिद्धान्त आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वर्तमान समय में आज की परिस्थिति को देखते हुए कुछ विचार दृष्टिगत होते हैं। सर्वप्रथम आज का संगीत अर्थात राग पद्धति 'नाट्य' के संबंध में न ही प्रयोग की जाती है, और न ही उसका विश्लेषण 'नाट्य' के संदर्भ में किया जाता है। अर्थात् वर्तमान समय में संगीत अपने निजी भाव को राग द्वारा प्रदर्शित करता है जिसमें चित्ताकर्षण होता है, केवल नाटक तक ही उसका क्षेत्र सीमित नहीं रहा है। संगीत के एक अंग रूप में नाटक के प्रत्यक्ष रूप का कोई विशिष्ट स्थान नहीं रह गया क्योंकि गायन, वादन एवं नृत्य तीनों ही पृथक कला के रूप में प्रदर्शित किए जा रहे हैं।

वर्तमान समय में 'राग गान' पद्धति का सम्पूर्ण रूप से परित्याग कर दिया गया है। ध्यान चित्र एवं रागमाला आदि के लोप होने से संगीत के स्पष्ट स्वरूप को व्यक्त करने की संभावना का संबंध अब केवल नादमय स्वरूप से है। अर्थात रस सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में विभाव, अनुभाव द्वारा कारण प्रभाव केवल रागों के नादात्मक स्वरूप के साथ जोड़ा जा सकता है। अतः प्रदर्शित किए गए संगीत के अनुसार ही राग के विशिष्ट भाव को अनुभव किया जा सकता है।

नाटक से हटकर संगीत में स्वतन्त्र विकास के कारण इसमें ध्वनि प्रयोग का विस्तार श्रेत्र भी बढ़ गया है, किन्तु साथ ही संगीत में नाटक को किसी विशिष्ट स्वरूप और स्थिति के साथ जोड़ने की परम्परा भी लीन हो गई है और केवल भावमय स्वरूप ही विकसित हुआ है। इस परिस्थिति में नाट्य पर लागू रस सिद्धान्त को वर्तमान संगीत कला पर लागू करना असंभव है, किन्तु संगीत के आज के विकसित स्वरूप में इसके लिए वह कोई खेद का विषय नहीं है क्योंकि संगीत का सौन्दर्य एवं भाव नाद द्वारा व्यक्त किया जाता है। प्रत्येक 'राग' का एक अपना भाव होता है, जिसके द्वारा सह्रदय श्रोता को आनन्द प्राप्त होता है।

रस को हम किसी भी वस्तु का आधार या मूल आत्मा कह सकते हैं। अर्थात् जिस धातु का स्वाद ले सकें, जिसकी अनुभूति कर सके वही रस है। रस का अर्थ भिन्न–भिन्न तरह से लिया जाने लगा है। वेदों में रस को सोम रस के लिए प्रयुक्त किया है। उपनिषदों में इसे चिदानन्द कहते हुए ब्रह्मानन्द–सहोदर कहा है। साहित्य शास्त्रियों ने रस को जिस अर्थ में लिया है वह भिन्न है। आचार्य भरत ने नाट्य शास्त्र में रस के अवयवों का विवेचन करते हुए लिखा है–"**विभावानुभाव**

व्यभिचारी संयोगाद्रस निष्पत्तिः '' अर्थात भाव, अनुभाव व संचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

प्राकृतिक अर्थ में इसका अर्थ, पदार्थ आदि के रस से है। आयुर्वेद में इसका अर्थ शरीर की आन्तरिक ग्रन्थियों के रस से है जिस पर हमारा जीवन निर्भर है। तत्त्व दृष्टि से रस साम्यता है। बहुत ही सरल शब्दों में इसको इसी प्रकार समझा जा सकता है कि मानव जाति के अन्तःकरण में वास करने वाली भावनाओं के चरमोत्कर्ष को ही प्राचीन शास्त्रकारों ने रस की संज्ञा दी है। रस की निष्पत्ति तभी हो सकती है जब मनुष्य को वस्तु में आनन्द प्राप्त हो। ललित कला से ज्ञान वृद्धि के साथ–साथ अन्तःकरण की भावनाओं की भी वृद्धि होती है।

भावों की अभिव्यक्त करने की चेष्टा प्राणी का स्वभाव है, भावाभिव्यक्ति में नाद के उस रुप का भी एक विशिष्ट स्थान है, जो कि स्वतंत्र रुप से भाव व्यंजना करने में समर्थ है। शब्दों को उचित स्वर रुप में बोला जाए तभी वह प्रयुक्त (संगीत) होते हैं। इसी कारण रंजक स्वर समूह गीत कहलाता है। रंजकता राग का सर्वप्रथम गुण माना जाता है। राग की परिभाषा में कहा है '' योऽयं ध्वनि विशेषस्तु स्वर वर्णा विभूषिता रंजकों जनः चितानाम् सः रागो कथितौ बुधौ''। संगीत में राग की परिभाषा '' रंजते इति रागः'' कहकर की जाती है। लेकिन साधारण भाषा में हम देखेंगे तो राग स्वरों का समूह है, जो कुछ नियमों को लेकर गाया या बजाया जाता है। इसका सम्बन्ध थाट से होता है और व्यंकटमुखी के अनुसार राग जाति के मूल तत्वों पर आधारित हैं। जिसे ग्रह, अंश, न्यास आदि के नाम से जानते हैं। परन्तु राग का जन्म यद्यपि थाट से होता है, लेकिन थाट एक निर्जीव रचना कही जा सकती है, जबकि राग एक रसयुक्त व्यक्तित्व है। राग के अपने कुछ नियम होते हैं जैसे राग का वादी, सम्वादी स्वर होना, आरोह–अवरोह होना, समय आदि निश्चित होना।

राग को संगीत का एक गौरवपूर्ण रुप माना जाता है। यदि राग वृक्ष है तो रंजकता उसका फल है। राग व रस की बात जब हम करते हैं तो देखते हैं कि रस का राग में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। राग व रस का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। राग का गायन तथा वादन दोनों ही आनन्द का सृजन करने हेतु किया जाता है। दोनों का उद्देश्य श्रोता व कलाकार के मन में आनन्द का सृजन करना है। राग का रसस्वादन मूल रुप से वही व्यक्ति कर सकता है जो या तो संगीत का ज्ञान रखता हो या जिसकी संगीत में रूचि हो। अर्थात् संगीत में रसास्वादन मनुष्य के भाव पक्ष की ओर इंगित करता है।

संगीत के तीन अंग हैं – गायन, वादन व नृत्य। गायन तथा वादन में नाद के द्वारा रस की निष्पत्ति होती हैं। यद्यपि गायन में शब्दों का ही आश्रय लिया जाता है तथा वादन में केवल स्वरों का आश्रय लिया जाता है। नृत्य में ताल व भावों के माध्यम से रस की निष्पत्ति होती है। नृत्य में रसानुभूति अधिक सुलभ है। चूंकि नृत्य नाटक के अधिक निकट है अतः इसके द्वारा रसनिष्पत्ति अधिक सहज होती है। इसके अतिरिक्त नृत्य से ही साहित्य में वर्णित नवरसों की प्राप्ति भी हो जाती है। किन्तु गायक तथा वादक के द्वारा श्रृंगार, करूण, शांत एवं वीर आदि रसों के अतिरिक्त अन्य रसों की निष्पत्ति नहीं होती है। हाँ जब संगीत का प्रयोग नाटक में, नृत्य में या फिल्म आदि में पार्श्व संगीत की दृष्टि से किया जा रहा हो तो इसके द्वारा सभी रसों की निष्पत्ति सम्भव है। शास्त्रीय संगीत में जब यथा समय राग के माध्यम से श्रोता को आनन्द की अनुभूति होती हैं वही रसावस्था है। **रस मुख्यतः नौ माने जाते हैं।**

भारतीय साहित्य में काव्यशात्रानुसार नौ रस माने गए हैं। इसी प्रकार भारतीय संगीत शास्त्रज्ञों ने भी नव रसों का विस्तृत वर्णन किया है जो इस प्रकार हैः

1. श्रृंगार रस	2. वीर रस	3. करूण रस	4. शांत रस	5. रौद्र रस
6. भयानक रस	7. वीभत्स रस	8. अद्भुत रस	9. हास्य रस	

एक दसवां रस भक्ति रस के नाम से जाना जाता है। इन सभी रसों का उल्लेख हमारे काव्यों में मिलता है। संगीत में काव्य होने के नाते उन सभी रसों का समावेश हो सकता है। संगीत को स्वरों की भाषा कहा है। परन्तु वाद्य संगीत में शब्दों का स्थान नहीं है। वीर रस, श्रृंगार रस, करूण रस, व शांत रस इनका संगीत में उपयोग इस तरह से माना जाता है जैसे — सा—म की प्रकृति वाले रागों में शांत रस, ग—ध वाले रागों में गम्भीर रस, प की चंचल व निषाद की सरल प्रकृति मानी है। शारंगदेव ने 'संगीत रत्नाकर' में निम्न प्रकार से रस निष्पत्ति मानी है।

सा — वीर रस, रौद्र रस
रे — वीर रस, रौद्र रस
ग — करूण रस
म — करूण रस
प — हास्य रस व श्रृंगार रस
ध — भयानक रस
नी — करूण रस

शारंगदेव ने रसों को विभिन्न स्वरों से निम्न प्रकार जोड़ा है :—

स—रे — वीर रस
ग—नि — करूण रस
प—म — हास्य रस
ध — वीभत्स रस

भरत ने स्वरों में रस का विभाजन इस प्रकार किया है —

म — हास्य रस
प — श्रृंगार रस
स — वीर रस
रे — रौद्र रस

कुछ विद्वानों ने राग में प्रयुक्त होने वाले स्वर से रस की निष्पत्ति मानी है। राग में प्रयुक्त होने वाले स्वरों के माध्यम से उसमें रस को जोड़ा है। जैसे कोमल स्वर वाले रागों का सम्बन्ध भक्ति रस से जोड़ा गया है। इसके अतिरिक्त दोनों मध्यमों का प्रयोग श्रृंगार रस से जोड़ा है तथा कोमल ग ध नि स्वरों से वीर रस का सम्बन्ध जोड़ा गया है।

कुछ विद्वानों ने ऐसा भी माना है कि किसी विशिष्ट राग से विशिष्ट रस की उत्पत्ति होती है। जैसे भैरवी राग को करूण व श्रृंगार रस के लिए उपयुक्त माना है। मल्हार अंग के सभी राग वियोग श्रृंगार रस के लिए उपयुक्त माने गए हैं।

1.4 संगीत में लय

भारतीय संगीत के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'श्रुति' इसकी जननी तथा 'लय' जनक हैं। यह सत्य है कि संगीत का आधार स्वर एवं लय ही हैं। सामान्यतः लय शब्द के दो अर्थ होते हैं—पहला सामान्य शाब्दिक तथा दूसरा परिभाषिक। लय का स्पष्ट शाब्दिक अर्थ है संयोग, एकरूपता, मिलन। जब हमारा मस्तिष्क किसी वस्तु अथवा विचार में लीन हो जाता है तो हम कहते हैं कि यह 'लय' की स्थिति है। इस प्रकार लय का प्रयोग विभिन्न सन्दर्भों और अर्थों में किया जाता है।

पारिभाषिक अर्थ में लय को ताल एवं काल माप का आधार माना जाता है। प्रकृति जगत में प्रत्येक पदार्थ किसी गति के अधीन है, जो उसकी लय है। उसे उस गति के अनुशासन में ही

रहना होता है। इसी प्रकार संगीत में स्वर और गीत की प्रस्तुति लय के आधार पर ही की जाती है। आचार्य अभिनव गुप्त ने कहा है –*'कलायां एवं च लयं बिना न स्वरूप लाभः'* अर्थात् लय के बिना क्रिया के स्वरूप का लाभ नहीं हो सकता। संगीत के अन्तर्गत गायन, वादन तथा नृत्य में कोई न कोई लय अवश्य होती है।

लय की परिभाषाएं :

- समय की समान गति को लय कहते हैं।
- संगीत में प्रयोग की जाने वाली गति को *'लय'* कहते हैं।
- ताल में एक किया और दूसरी किया के बीच की विश्रांति का काल, जो पहली किया का विस्तार है, *'लय'* कहलाता है।
- संगीत रत्नाकर के अनुसार –**'कियानान्तर विश्रांति लयः'** अर्थात क्रिया के अन्त में विश्रांति को लय कहते हैं।
- अमरकोश के अनुसार –**'क्रिया विश्रांति लयः'** अर्थात दो क्रियाओं के बीच के अन्तराल को लय कहते हैं।

यूं तो लय के अनगिनत प्रकार हैं, परन्तु लय को प्रधानतः तीन भागों में बांटा गया है :–

1. विलम्बित लय – जिस लय की चाल बहुत धीमी होती है तो उसे विलम्बित लय कहते हैं। जैसे – गायन विधा में बड़ा ख्याल, ध्रुपद, धमार तथा तंत्र वाद्य में मसीतखानी गत आदि।

2. मध्य लय – जो लय न ज्यादा धीमी और न ही द्रुत हो, अर्थात साधारण लय को 'मध्य लय' कहते हैं। जैसे – गायन विधा में छोटा ख्याल, भजन, ठुमरी तथा तंत्रवाद्य में रज़ाखानी गत और अधिकतर नृत्य में मध्य लय रहती है।
3. द्रुत लय – जिसकी गति बहुत तेज हो अर्थात द्रुत हो उसे द्रुत लय कहते हैं। यह लय मध्यलय से दुगुनी तथा विलम्बित लय से चौगुनी होती है। जैसे–गायन विधा में तराना, तंत्रवाद्यों में झाला तथा नृत्य में ततकार द्रुत लय में होती हैं।

इन लयों के बीच कोई निश्चित रेखा निर्धारित नहीं की जा सकती, इन्हे सापेक्षिक माना जाना चाहिए।

कहने का अभिप्राय यह है कि जब लय को नापा जाता है तो कला एवं मात्रा से नापा जाता है और उस कला एवं मात्रा में जितना समय लगता है उसी के अनुसार लय निर्धारित होती है। जैसे कोई रचना आठ मात्रा की है तो जितना समय आठ मात्रा में रचना के गाने में लग रहा है वह मध्य लय मान लें और उसी आठ मात्रा की रचना को यदि 16 मात्रा के समय काल में यानि धीमी लय करके दुगुने समय में गाया जाएगा तो वह विलम्बित लय कहलाएगी। यदि इसी आठ मात्रा के गीत को आधे यानि 4 मात्रा काल गाया जाएगा तो गति तेज हो जाएगी, तो यह द्रुत लय कहलाएगी। अब आप समझ गये होंगे कि द्रुत लय से दुगुने समय के कारण मध्यलय तथा मध्यलय के दुगुने समय लेने पर विलम्बित लय बनती है। यही संगीत का सिद्धान्त है।

रस निष्पत्ति के साधनों में लय का भी महत्वपूर्ण स्थान हैं। लय किसी गति की नपी तुली क्रिया होती है। संगीत का माध्यम स्वर व लय है। अतः लय का भी राग के रस से घनिष्ट सम्बन्ध है। लय के तीन प्रकार **विलम्बित लय, मध्य लय तथा द्रुत लय** से अलग–अलग रस की उत्पत्ति मानी जाती है। कई विद्वानों के मतानुसार विलम्बित लय में करूण व शांत रस की उत्पत्ति, मध्य लय में हास्य व श्रृंगार रस एवं द्रुत लय में वीर व भयानक रस की उत्पत्ति मानी गई है।

विलम्बित लय	मध्य लय	द्रुत लय
शांत, करूण	हास्य, श्रृंगार	वीर, भयानक

किन्तु यह आवश्यक नही है कि हमेशा द्रुत लय में भयानक रस या वीर रस ही उत्पन्न हो, द्रुत लय में श्रृंगार रस की उत्पत्ति भी हो सकती है। प्रो0 स्वतन्त्र शर्मा के अनुसार – 'संगीत की लय, बंदिश की प्रकृति, राग के स्वभाव के अनुसार परस्पर तालमेल होने पर लय विशेष से रस की निष्पत्ति होगी।' इस प्रकार 'रस' और 'लय' का गहरा संबंध है।

<u>लयकारी</u> – लयकारी का आधार लय है। लय के विभिन्न दर्जे दिखाने या करने की प्रक्रिया लयकारी कहलाती है। जब कोई संगीतकार (गायक, वादक व नर्तक) एक मात्रा में 1, 2, 3 आदि मात्रा बोलता या बजाता है, तो इस क्रिया को लयकारी कहते हैं। विद्वानों द्वारा लयकारी के दो प्रकार माने जाते हैं। 1. सीधी लयकारी – इसके अन्तर्गत दुगुन, तिगुन, चौगुन आदि लयकारीयां आती हैं। 2. आडी लयकारी – इसके अन्तर्गत आड, कुआड, बिआड आदि लयकारीयां आती हैं। लयकारीयों के नामकरण का आधार है कि एक मात्रा में कितनी मात्रा बोली, गाई या बजाई जा रही हैं। जैसे सीधी लयकारी में 1 मात्रा में 2 मात्रा दुगुन, 1 मात्रा में 3 मात्रा तिगुन, 1 मात्रा में 4 मात्रा चौगुन आदि। इसी प्रकार आड लयकारी में 1 मात्रा में $1^1/_2$ मात्रा आड, 1 मात्रा में $1^1/_4$ मात्रा कुआड, 1 मात्रा में $1^3/_4$ मात्रा बिआड कहलाती है।

1.5 संगीत में छन्द

जिस प्रकार लय के महत्व को आपने पढ़ा व समझा, उसी प्रकार गायन, वादन व नृत्य में छन्दों का भी महत्व है। लय का महत्व, उसकी माप के अन्तर्गत गति में परिवर्तन, जोकि आकर्षक हो तथा श्रोता या दर्शक का मनोरंजन करे, छन्द कही जाती है। संगीत में छन्दों के प्रयोग से रसवृद्धि होती।

संगीत में छन्द का उदाहरण हम विभिन्न लयों व तालों से समझ सकते हैं। आप जानते हैं कि दादरा ताल में 1 2 3 का छन्द बनता है, रूपक ताल में 1 2 3, 1 2 3 4 का छन्द बनता है आदि। विशेष रुप से गायन में हम समझ सकते हैं कि ताल विशेष, जिसमें गायन चल रहा हो, में अन्य तालों के छन्दो का विभिन्न लयों में प्रयोग करने से सौन्दर्य वृद्धि होती है। फलतः रसान्तर होने से भी संगीत का आकर्षण बढ़ जाता है। ताल वाद्यों पखावज या तबले में छन्दों के विविध प्रयोग कर्णप्रिय होते हैं, वही तालाश्रित नृत्य में छन्दों का महत्व बहुत सुन्दर लगता है।

संगीत (गायन पक्ष) की सुन्दरता के लिए काव्य आवश्यक है। काव्य अर्थात किसी कविता को गाते हुये हम, यथोचित स्वरों व निहित छन्द का प्रयोग करते हैं तो शब्दार्थ के समीप पहुँचते हैं और रसोत्पत्ति होती है, जिससे सौन्दर्य वृद्धि होती है। गायन में कविता का भाव प्रकट करने के लिए व सौन्दर्य की उत्पत्ति के लिए हमें लय के साथ—साथ छन्दों का प्रयोग करना भी आवश्यक होता है।

संगीत शास्त्र में 'पद' शब्द का प्रयोग कई स्थानों पर मिलता है। 'पद' को आजकल बंदिश भी कहा जाता हे। पद वह रचना है जो किसी छन्दमें हो, किसी ताल में निबद्ध हो, कविता के शब्द—सार्थक व संवाद भाव युक्त हो। सौन्दर्य निष्पत्ति के लिए यह आवश्यक है।

वैदिक मंत्रों के गायन से लेकर आज तक की गीत रचना में छन्द के महत्व को समझा जा सकता है। छन्द में प्रभाव व आकर्षण की क्षमता, सुन्दरभाव समाहित रहती है जो सौन्दर्य वृद्धि हेतु आवश्यक होती है। भरतमुनि द्वारा वर्णित ध्रुपद गायन को ही **पद** कहा गया। पदों के गायन में

ताल, यति, छन्द, लय, रस व भाव का उचित प्रयोग होता था। मतंग ने भी वृह्रद्देशी में गीति में पद, लय व छन्द युक्त अलंकारों का वर्णन किया है।

प्राचीनतम गायन से लेकर आधुनिक गायन तक छन्द, सौन्दर्य के लिए आवश्यक है। पद अथवा बंदिश के लिए भी छन्द अनिवार्य है। विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि ध्रुपद, धमार व ख्याल गायकी में विभिन्न घरानों की बंदिशें जो इन विशेषताओं से परिपूर्ण थी वह आज तक गाई जा रही हैं। कई सुन्दर पदों या बंदिशों से तो राग लोकप्रिय हो गए और उनका प्रचार हुआ। अतः बंदिश में छन्द, शब्दों का भावार्थ अनिवार्य हो जाता है। अच्छी कविता का श्रृंगार यथोचित स्वरों से करने पर बंदिश अमर हो जाती है।

जब हम छन्द पर विचार करते हैं तो छन्द की क्षमता पर विचार करना होगा। लघु, गुरू युक्त वर्णों के प्रयोग के साथ—साथ जब किसी पद रचना में शब्दों को छन्द के अनुरूप व्यवस्थित कर भाव की वृद्धि का ध्यान रखकर, पद रचना व बंदिश तैयार की जायेगी तो वह अवश्य सुन्दर होगी एवं रस की उत्पत्ति तथा संगीत में सौन्दर्य वृद्धि का कारण बनेगी।

छन्द युक्त बन्दिश के लिए आवश्यक है :—

1. रागानुसार स्वरों का संयोजन।
2. बंदिश किसी ताल के ठेके में बंधी हो।
3. शब्द रचना सुन्दर व भावपूर्ण हो।

प्राचीन काल से ही यह परम्परा है कि हमारा जो भी ज्ञान रहा, उससे बनी हुई गीतमय, मधुर स्वरों एवं छन्दयुक्त रचना कर्णप्रिय होती है तथा श्रोता को आकर्षक करती है। यदि भावपूर्ण शब्दों का प्रयोग संवादयुक्त हो तो रचना,पद या बंदिश लोक मानस में अंकित हो जाती है।

पद(बंदिश), पद्य व सार्थक शब्द, छन्द के अभिन्न अंग हैं। साहित्य में छन्द दो प्रकार के माने जाते हैं :—

1. वार्णिक (वृत्त—छन्द) — इसके गण 3—3 अक्षर के होते हैं तथा ये आठ प्रकार के होते हैं।
2. मात्रिक (जाति छन्द) — वे छन्द जो मात्रा गणों की सहायता से लिखे जाते हैं, मात्रिक छन्द कहलाते हैं। ये 4—4 मात्रा के होते हैं तथा इनके पांच प्रकार होते हैं।

छन्द का मूल लक्षण है—लय में बंधा होना। इसी कारण सामवेद में ऋचाओं को गेय माना है। छन्द युक्त गायन की यही परम्परा आज भी चली आ रही है।

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :—

1. संगीत विद्वानों में................................. रस माने हैं।
2. संगीत में सा से... रस की निष्पत्ति होती है।
3. भरत के अनुसार ....स्वर में करूण, श्रृंगार व वीर रस को निहित बताया गया है।
4. शांत रस व करूण रस .... लय में प्रभावी रहता है।
5. लय....................... प्रकार की होती है।
6. साहित्य में छन्द................................... प्रकार के माने जाते हैं।
7. ....को आजकल बंदिश भी कहा जाता है।
8. गायन विधा में तराना व तंत्रवाद्यों में झाला ....लय में होता है।

1.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप संगीत में रस, लय व छन्द के महत्त्व को समझ चुके होंगे। संगीत में रस एक अनिवार्य तत्त्व है जो आत्मिक सुख व जन–रंजन हेतु महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। संगीत एक ऐसा रस है जिसमें कलाकार तो रसमय होकर बहता चला जाता है साथ में श्रोताओं को भी प्रभावित करता है। जब लय और छन्द के साथ रसमय संगीत होता है तो चरम आनन्दानुभूति होती है। लय जो ताल युक्त होती है संगीत के लिए प्राण का कार्य करती है। स्वर शरीर है तो ताल उसका प्राण। आप रस के महत्त्व के साथ लय की महत्ता को समझ चुके हैं। लय यदि छन्द युक्त हो और 'शब्द' अर्थात् काव्य युक्त हो तो संगीत के गायन पक्ष में सुन्दरता आती है। कोई भी गायन की रचना में कविता के शब्दों को, अनुकूल स्वर समूह के साथ ताल व छन्द युक्त प्रयुक्त करने पर रस की उत्पत्ति होती है। स्वरों का माधुर्य जब लय से युक्त कविता के शब्दों द्वारा प्रस्तुत होता है तो भौतिक व आत्मिक सुखपूर्ण सर्वोत्त्म रचना कहा जाता है। इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि संगीत में रस, लय वछन्द किस प्रकार आपस में जुड़े हुए हैं। फलतः स्वरों की रचना (स्वर), लय बद्धता (ताल) व छन्द का समावेश ही सर्वोत्त्त संगीत व गायन की प्रस्तुति है। शास्त्रकारों द्वारा अपने ग्रन्थों में संगीत में रस, लय व छन्दों के महत्व का वर्णन किया गया है। भरत का 'नाट्यशास्त्र', शारंगदेव का 'संगीत रत्नाकर' मुख्य रुप से रस सिद्धान्त का वर्णन करता है। संगीत चूंकि क्रियात्मक है इसलिए किसी प्रस्तुति में गायक, वादक तथा नर्तक द्वारा अपने या परिस्थिति जन्य वातावरण के अनुरुप अपने अनुभव से भी रसों को व्यक्त करने का प्रयास किया जाता है।

1.7 शब्दावली

1. रस निष्पत्ति	–	रस का पैदा होना, रस उत्पन्न होना
2. आंगिक	–	अंगों से सम्बन्धित
3. वाचिक	–	वाणी से सम्बन्धित
4. सात्विक	–	भारतीय दर्शन में आध्यात्मिक प्रभाव अर्थात सच्चे, तत्त्व से युक्त
5. अनुभाव	–	भाव के पीछे का भाव

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1.नौ 2.वीर रस, रौद्र रस व करूण रस 3.प(पंचम) 4. विलम्बित
5.तीन(विलम्बित, मध्य व द्रुत) 6.दो(वार्णिक व मात्रिक) 7. 'पद' 8. द्रुत लय

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, प्रो0 स्वतन्त्र, सौन्दर्य, रस व संगीत, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
2. शास्त्री, श्री बाबूलाल शुक्ल(सम्पादक एवं व्याख्याकार), भरत(मूल ग्रन्थकार), नाट्यशास्त्र अध्याय–28, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
3. जौहरी, सुश्री सीमा, संगीतायन, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
4. माथुर, सुश्री मीरा, संगीत परामर्श–2।
5. जोशी, स्व0 पं0 भोला दत्त, संगीत शास्त्र ।

1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वसन्त, *संगीत विशारद,* संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. चौधरी, डा0 सुभाष रानी, *संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त,* कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संगीत में रस, लय व छन्द का क्या महत्त्व है? विस्तार से समझाइए।

इकाई 2 – सौन्दर्यशास्त्र भारतीय एवं पाश्चात्य संगीत के सन्दर्भ में

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 सौन्दर्यशास्त्र
2.4 सौन्दर्यशास्त्र भारतीय संगीत के संदर्भ में
2.5 सौन्दर्यशास्त्र पाश्चात्य संगीत के संदर्भ में
2.6 संगीत में सौन्दर्यात्मक तत्व
2.7 सौन्दर्य के आवश्यक तत्व
2.8 सौन्दर्य विषयक मान्यताएं
2.9 सौन्दर्यशास्त्र व अन्य शास्त्र
2.10 सारांश
2.11 शब्दावली
2.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.14 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रदर्शन कला–संगीत में स्नातकोत्तर, (एम0पी0ए0एम0–501) पाठ्यक्रम की दूसरी इकाई है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप रस, लय व छन्द को समझ चुके होंगे। आप यह भी जान चुके होंगे कि संगीत में सौन्दर्य तथा सौन्दर्य उत्पन्न करने में रस, लय व छन्द का विशेष महत्व है।

प्रस्तुत इकाई में भारतीय तथा पाश्चात्य संगीत में सौन्दर्य को समझाया गया है। रस, लय व छन्द, सौन्दर्य व रंजकता उत्पन्न करने के लिए आवश्यक है। आनन्दानुभूति तभी संभव है जब हमें सौन्दर्य का बोध होता है। अतः संगीत का मुख्य धर्म सौन्दर्यानुभूति कराना है। इस इकाई में सौन्दर्य शास्त्र के सम्बन्ध में भारतीय तथा पाश्चात्य दार्शनिकों के मत व विचारों को समझाने का प्रयास किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप भारतीय तथा पाश्चात्य संगीत में सौन्दर्यशास्त्र को समझ सकेंगे। सभी भारतीय तथा पाश्चात्य विचारकों ने सौन्दर्यानुभूति को आनन्दात्मक माना है। भारतीय चिन्तक सौन्दर्यानुभूति को आन्तरिक मानते हैं। पाश्चात्य संगीत विचारक इसे विज्ञान के समकक्ष रख कर अध्ययन करने का विचार रखते हैं।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :—

- सौन्दर्य की निष्पत्ति व महत्व के सम्बन्ध में भारतीय व पाश्चात्य संगीत शास्त्रियों के विचारों व उनके द्वारा प्रतिपादित मतों को समझ सकेंगे।
- सौन्दर्य के आवश्यक तत्वों को जान सकेंगे।
- संगीत में सौन्दर्य के महत्व व सौन्दर्यात्मक तत्वों को समझ सकेंगे।

2.3 सौन्दर्यशास्त्र

सौन्दर्य का अर्थ है — **एन्द्रिय सुख की चेतना।** सौन्दर्यशास्त्र मानव की कला, चेतना और तत्सम्बन्धी आनन्दनुभूति का विवेचन व विश्लेषण प्रस्तुत करता है। जब से मनुष्य जीवन अस्तित्व में आया मनुष्य के भीतर स्वतः ही कलात्मक अभिरूचियां प्रकट हुई जिसे वह कलाकृतियों, मूर्तियों आदि के द्वारा प्रकट करता रहा। इनके द्वारा जो आनन्दानुभूति प्राप्त होती है इसका व्यवस्थित ढंग से चिन्तन, अध्ययन ही सौन्दर्यशास्त्र का विषय है। अठ्ठारवीं शताब्दी में एलेक्जेंडर वाम गार्टन ने पहली बार 'एस्थेटिक्स' शब्द का प्रयोग किया था। एस्थेटिक्स ग्रीक भाषा का शब्द है इसी का हिन्दी अनुवाद सौन्दर्यशास्त्र है। प्रारम्भ में सौन्दर्यशास्त्र का प्रयोग दर्शन शास्त्र की शाखा के रूप में हुआ था फिर धीरे—धीरे सौन्दर्यशास्त्र को ललित कलाओं के सन्दर्भ में रखकर भी इसका अध्ययन किया जाने लगा। चूँकि संगीत भी ललित कलाओं के अन्तर्गत सम्मिलित है अतः यह भी सौन्दर्यशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत आ गया। हीगल ने अपने ग्रन्थ "The Philosophy of Fine Arts" में कहा है — ''यह एक ऐसा विषय है जिसके अन्तर्गत सौन्दर्य का सम्पूर्ण क्षेत्र आता है। स्पष्ठ रूप से कहें तो इसका क्षेत्र कला का कहना चाहिए, यह ललित कला का क्षेत्र है।

2.4 सौन्दर्यशास्त्र भारतीय संगीत के सन्दर्भ में

भारत वर्ष में सौन्दर्य तत्व की व्याख्या में प्राचीन परम्परा समृद्ध रही है। प्राचीन ग्रन्थों में यही सौन्दर्य चारूत्व, रमणीयता, शोभा, कॉति, चमत्कार, वैचित्य आदि नामों से जाना जाता रहा है। भारतीय संस्कृति का मूल आदर्श ''सत्यम शिवम् सुन्दरम्'' पर टिका है। यद्यपि सौन्दर्य का अर्थ पाश्चात्य एस्थेटिक्स के निकट है लेकिन पूर्णतः उसके समान अर्थ में भारतीय दर्शन में नहीं मिलता। सौन्दर्य शास्त्र को लालित्य शास्त्र या नन्दन शास्त्र का प्रयोग कर, एस्थेटिक्स को पर्यायवाची के रूप में प्रयोग किया गया है। कोई वस्तु या कला हमें भौतिक या मानसिक रूप से इन्द्रिय सुख का अनुभव कराती है तो वह सौन्दर्य की वस्तु है या कला है। किसी कला के दर्शन या श्रवण से हमें आनन्द मिलता है तो यह सुख का अनुभव ही सौन्दर्यानुभूति है।

भारतीय शास्त्रज्ञों के अनुसार सौन्दर्य के तीन पक्ष हैं :—

1. कलाकार
2. कलाकृति
3. कला रसिक

कलाकार व कला रसिक के सौन्दर्य बोध का स्तर एक होना आवश्यक है। भारतीय विद्वानों के अनुसार सौन्दर्य दो प्रकार का है — वाह्य(जिससे हमारी इन्द्रियों को सुख मिलता है) तथा दूसरा आन्तरिक (जिसका अनुभव अन्तर आत्मा से होता है)।

भारतीय विचारकों के अनुसार व्यक्त किये गये विचारों का अध्ययन हम करेंगे :—

- भारतीय साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋगवेद में सौन्दर्य को **'श्री'** नाम से सम्बोधित किया गया है, *इसके स्वरुप को समझना ही सौन्दर्य को समझना है।*
- **के0 एस0 रामास्वामी कहते हैं – ''सौन्दर्य**शास्त्र, कला में अभिव्यक्त सौन्दर्य का विज्ञान है।''
- **डॉ0 कान्तिचन्द पाण्डेय के अनुसार** – ''सौन्दर्यशास्त्र ललित कलाओं का विज्ञान तथा दर्शन है। ''वे मानते हैं कि सुन्दरता जनित इन्द्रिय सुख विवेक के आदर्शों का तिरस्कार कर निम्नकोटि के रुझानों को तृप्त करने तथा आत्मा के क्षण भंगुर और विवेक शून्य अंश को प्रधान बनाने से होता है।'
- **श्री के0सी0 पाण्डे** के अनुसार – ''सौन्दर्य वे कलाएँ हैं जिनकी कृतियॉ परमब्रह्म को इन्द्रिय ग्राह्य रुप में इस प्रकार से उपस्थित करती है कि वे आवश्यक मानसिक दशाओं से युक्त सहृदय कला–रसिकों के लिए ब्रह्मानन्द प्राप्ति का समुचित साधन बन जाता है।'
- **डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार** – ''सौन्दर्यशास्त्र का सम्बन्ध सैद्धान्तिक विवेचना से है अर्थात् कला में निहित सौन्दर्य की प्रकृति, मूल तत्व, आस्वाद, प्रयोजन और उपादान आदि का सैद्धान्तिक विवेचन ही उसकी विषय परिधि में आता है। यह कला के मौलिक सिद्धान्तों की संहिता है।'
- **डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार** – ''सौन्दर्यशास्त्र और काव्य शास्त्र में पृथकता है, क्योंकि काव्य शास्त्र केवल काव्य तक ही सीमित है और काव्य सौन्दर्य का ही विवेचन करता है। जब की सौन्दर्यशास्त्र काव्य, स्थापत्य, मूर्ति, चित्र और संगीत कला सभी कलाओं के सौन्दर्य का तत्व विवेचन करता है।'
- **डॉ0 कुमार विमल के अनुसार** – '' सौन्दर्यशास्त्र का अध्ययन सौन्दर्य, कल्पना, बिंब और प्रतीक इन चार अभिधानों के अन्तर्गत होता है।''
- **डॉ0 एस0एन0 घोषाल** ने सौन्दर्य तत्वों का विभाजन 'ऐतिहासिक और सांस्कृतिक, कलात्मक, दार्शनिक एवं काव्यात्मक – इन चार भागों में किया है।
- **डॉ0 रामविलास शर्मा** के अनुसार ''प्रकृति मानव जीवन तथा ललित कलाओं के आनन्ददायक गुण का नाम सौन्दर्य है।''
- **श्री लीलाधर गुप्त** के अनुसार '' सौन्दर्य प्रकृति के कुछ दृश्यों अथवा कलाकृतियों और मानव मन के मध्य एक विशिष्ट सम्बन्ध का द्योतक है।''
- संस्कृत के पहले आचार्य **पंडितराज जगन्नाथ** हैं, जिन्होंने रमणीयता को ही सौन्दर्य माना है।
- **डॉ0 रमेश कुन्तल मेघ** का सौन्दर्य शास्त्रीय दृष्टिकोण अत्यन्त महत्वपूर्ण व व्यापक है। अपनी पुस्तक ''अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा'' में कला एवं सौन्दर्य बोध, कलाकार, कलाकृति, कलाओं का वर्गीकरण, सृजन प्रकिया, सौन्दर्य की तात्विक प्रवृत्ति आदि पर उन्होंने गम्भीरता से विचार किया है। वे कहते है, ''सौन्दर्यशास्त्र का प्रकृत या साधन मूल्य सौन्दर्य है। सौन्दर्यशास्त्र कला के सृजन तथा आशंसा, प्रेरण तथा प्रेक्षणीयता, कौशल तथा अनुशील कला सम्बन्धी प्राकृतिक गुणों से नजदीक का सम्बन्ध रखता है। वस्तुतः यह शास्त्र कला का दर्शन कहा जा सकता है।''
- कवि **माद्य** ने सौन्दर्य के सम्बन्ध में नवीन और प्रभावशाली धारणा व्यक्त की है। उनकी दृष्टि में सौन्दर्य वह है जो क्षण–क्षण में नवीनता प्राप्त करें।
- भारतीय मनीषियों के अनुसार – ''Aesthetics is not only confined to that limited branch of study which deals with the appreciation of art works, but is the dilineation of an entire realm of inquiry with in which all ordinary experience, becomes aesthetics. Detached from the occurence of daily life, and intensly concentrated on the aesthetic object, the perceiver experiences an intense joy that has been characterised as having almost the

same quality of joy that arises out of the realisation of Absolute(Brahman). It is an intensely active process resulting in a state of heightened emotion which has its effect on bodily processes of the perceived effecting the kind of purgation or psycho-physical healing.''

अतः स्पष्ट होता है सौन्दर्यशास्त्र कला का सैद्धान्तिक रूप से विवेचना करता है तथा कला से सम्बन्धित मानव व्यवहार का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करता है। वस्तुतः सौन्दर्यशास्त्र के सिद्धान्तों में मतानुसार होने पर भी स्पष्ट है कि सौन्दर्यानुभूति से आनन्द मिलता है अतः भारतीय मतों से स्पष्ट है कि सौन्दर्यशास्त्र में हम कला द्वारा अभिव्यक्त आनन्द (ऐन्द्रिय व आत्मिक) का अध्ययन करते हैं।

2.5 सौन्दर्यशास्त्र पाश्चात्य संगीत के सन्दर्भ में

पश्चिम में सौन्दर्यशास्त्र का चिन्तन वामगार्टन से माना है। इससे पूर्ण पश्चिम दर्शन के अन्तर्गत ही एक शास्त्र के रूप में कला सम्बन्धी मूल्यांकन में सहायक होता रहा है। अठ्ठारवीं शताब्दी में एलेकजेन्डर वामगार्टन (1714–1762) ने पहली बार 'एस्थेटिक्स' शब्द का प्रयोग किया। वाम गार्टन ने कालान्तर में एस्थेटिक्स के स्थान पर साइन्स आफ ब्यूटी का प्रयोग किया।

वामगार्टन के बाद पश्चिम के विचारको ने 'सुन्दर' के अनुभव को सौन्दर्यानुभूति के रूप में ग्रहण किया। कांट नामक विचारक ने इसे ज्ञान–विज्ञान से अलग कला माना। सौन्दर्य को अन्य शास्त्रों से जोड़ करके विभिन्न ललित कलाओं के परिपेक्ष में चिन्तन का विषय माना। सौन्दर्य चेतना विषय है इसलिए सौन्दर्य चेतना का अर्थ है और सौन्दर्य बोध मनुष्य की एक भावात्मक अवस्था है। सौन्दर्य बोध का आधार होने से इसे सौन्दर्य दर्शन भी कहा जाता है, जो सौन्दर्यशास्त्र के अन्तर्गत रखकर अध्ययन किया जाता है।

सौन्दर्य को लेकर पश्चिम के विचारकों ने अनके व्याख्याएं की हैं। प्लेटो और सैन्द ऑगस्टाइन प्राचीन और मध्य युगीन सौन्दर्य के चिन्तन के प्रतिनिधि है तो ह्यूम, कांट, हीगेल, शोपेनहार, क्रोचे आदि आधुनिक कला व सौन्दर्य प्रमुख विवेचक हैं। अठारवीं शताब्दी में वामगार्टन, विर्की और कांट ने व्यवस्थित रूप से सौन्दर्य का शास्त्रीय अध्ययन किया।

<u>बोसा के अनुसार</u> – सौन्दर्यशास्त्र का सम्बन्ध ललित कलाओं के माध्यम से व्यक्त सौन्दर्य है। उनकी दृष्टि में प्राकृतिक सौन्दर्य व कलात्मक सौन्दर्य में अन्तर दोनों ही मानव कल्पना और इन्द्रिय बोध पर निर्भर है। सौन्दर्यशास्त्र सुन्दर का दर्शन है। हीगल मानते हैं कि सौन्दर्यशास्त्र ललित कलाओं का दर्शन है। सौन्दर्यशास्त्र का सम्बन्ध ललित कलाओं के माध्यम से अभिव्यक्त सौन्दर्य से है। उनका मानना है कि ईश्वर ही, जो सुन्दर है, की अभिव्यक्ति प्रकृति और मानव द्वारा सृजित कलाकृतियों में होती है।

मेक्स डेजायर बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में 'सौन्दर्य शास्त्र और कला के समान्य विज्ञान' नाम से सभी विचारकों के मतों को एक साथ लेने का विचार रखते हैं। धीरे–धीरे यह विचार व्यापक होता गया और आधुनिक सौन्दर्यशास्त्र आज केवल पाश्चात्य कलाओं की विवेचना करता है वरन् विश्व की सामान्य कलाओं का विवेचन व विश्लेषण कर अध्ययन कर रहा है, और सौन्दर्य का क्षेत्र व्यापक हो रहा है।

लेंगर का मत आधुनिक विचारकों के मतों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। लेंगर का मत है कि सौन्दर्यशास्त्र ललित कलाओं के दार्शनिक विकल्पों और समस्याओं का सैद्धान्तिक निरूपण है। मुनरो

नामक विचारक ने भी सौन्दर्यशास्त्र को स्वतंत्र विषय में परिभाषित किया। इस प्रकार पाश्चात्य दार्शनिक विचारों ने सौन्दर्यशास्त्र को विज्ञान की कोटि में स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त किया।

वास्तव में सौन्दर्यशास्त्र भारतीय वाड़मय के लिए एक नया शब्द है। वर्तमान से पुराने समय तक भारतीय वाङमय में न तो इस शब्द का प्रयोग मिलता है और न ही इस नाम में किसी शास्त्र का उल्लेख मिलता है। संगीत में सौन्दर्य का तात्पर्य नाद सौन्दर्य से है। हिन्दी तथा कुछ अन्य भाषाओं में इसका इस्थैटिक्स के पर्याय से प्रयोग किया गया है। यह यूनानी भाषा के एस्थैटिक्स शब्द से उत्पन्न हुआ है। परंपरानुसार सौन्दर्यशास्त्र दर्शन की एक शाखा है, जिसका विवेचन विविध कला और प्रकृति का सौन्दर्य है। कुछ आधुनिक विचारक इसे दर्शन की अपेक्षा विज्ञान कहना अधिक पसन्द करते हैं। सौन्दर्यशास्त्र का मूल विषय सौन्दर्य के स्वरूप की व्याख्या है।

सौन्दर्य शब्द का अंग्रेजी शब्द में पर्याय ब्यूटी है। ब्यूटी का अर्थ है रसिक का भाव अथवा रसिकता का श्रृंगारिक पुरूष का गुण है। संसार में सौन्दर्य के विभिन्न रूपों के अलग दृष्टिकोंण है और किसी भी वस्तु के सौन्दर्य के लिए प्रत्येक व्यक्ति का अपना निजी दृष्टिकोण होता है और कुछ का सौन्दर्य के प्रति आदर्शवादि दृष्टिकोण है। सौन्दर्यशास्त्र की परिभाषा अनेक विद्वानों ने अपने ढंग से प्रस्तुत की है जो कुछ इस प्रकार है :–

1. **हैलमुट कुनन के अनुसार** –''सौन्दर्यशास्त्र कलाओं एवं उनसे सम्बद्ध व्यवहार तथा अनुभव का सैद्धान्तिक अध्ययन है। परंपरा के अनुसार यह दर्शन की एक शाखा है। इसका उद्‌देश्य सौन्दर्य, कला और प्रकृति में अभिव्यक्त उसके बहुविध रूपों का अध्ययन है।''

2. **एफ. ई. स्पाट के अनुसार** – ''कुछ अन्य विद्वानों ने सौन्दर्यशास्त्र का प्रयोग कला संबंधी सामान्य परिपेक्ष के अर्थ में किया है जो दार्शनिक भी हो सकता है और यह वैज्ञानिक भी हैं अथवा यह प्रस्ताव दिया है कि ''सौन्दर्यशास्त्र'' को विज्ञान भी मान लेना चाहिए।''

3. **हीगल के अनुसार** – ''यह एक ऐसा विषय है जिसके अन्तर्गत सौन्दर्य का सम्पूर्ण क्षेत्र आ जाता है। स्पष्ट रूप से देखें तो यह कला का क्षेत्र है या यह कहें कि यह ललित कला का क्षेत्र है। सौन्दर्यशास्त्र शब्द ग्रीक भाषा का शब्द है, इसका अर्थ है दार्शनिक। ऐस्थेटिक्स जिसे देखने से पता चलता है कि 18 शताब्दी से पहले इसका कोई अस्तित्व नहीं था।''

4. **प्लेटो** – प्लेटो ने सौन्दर्य की विवेचना दर्शनशास्त्र के अन्तर्गत की है और दर्शन के क्षेत्र में सत्य को सौन्दर्य से अधिक महत्व दिया। प्लेटो ने ईश्वर को ही सुन्दर माना है।

5. **लेक स्पईनेक** – इन्होंने ज्ञान के दो भाग किए – प्रथम तर्क संगत और दूसरे को ''इन्द्रिय ज्ञान कहा था।

<u>दार्शनिक सौन्दर्य</u> – सौन्दर्यशास्त्र दर्शन की एक शाखा है। हिन्दी कोष के अनुसार दर्शन वह शाखा है जिसमें आत्मा, जीव मोक्ष धर्म है। सौन्दर्यशास्त्र और दर्शनशास्त्र में साम्य यह है सौन्दर्यशास्त्र जिन ललित कलाओं का अध्ययन करता है उनका लक्ष्य ही परम सुन्दर ईश्वर को स्थापित करना है। योग दर्शन में जिस प्रकार एकाग्रता की आवश्यकता होती है, ललित कलाएँ भी एकाग्रता की आदि होती हैं। ललित कलाऍं एकाग्र चिन्तन और ब्रह्म आदि से सम्बन्ध रखती हैं। इसी स्थान पर दर्शनशास्त्र और सौन्दर्यशास्त्र का साम्य हो जाता है। किन्तु सौन्दर्यशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र इसके अतिरिक्त विविध कलाओं के समाज सौन्दर्य तत्व, कलाकार और उसके गुण, कला, सृजन व उसका अन्य तत्व को ग्रहण करता है, दर्शनशास्त्र इन्हें ग्रहण नहीं करता और यही इन दोनों के बीच भिन्नता है।

भारतीय सौन्दर्य दर्शन प्रधान है व आध्यात्मिक भी है। सामान्य दृष्टिकोण से कला जहां एक ओर प्रकृति की अनुकृति है तो दूसरी ओर कलाकार की आत्मा की अभिव्यक्ति के रूप में होती है, उसी प्रकार चित्र तत्व की अभिव्यक्ति कला रूप में होती है। भारतीय सौन्दर्य दर्शन पाश्चात्य सौन्दर्य दर्शन की अपेक्षा अधिक अंर्तमुखी व अध्यात्मिकता की ओर से उन्मुख है। यहाँ उत्तम वस्तु के

सौन्दर्य में ईश्वरीय प्रेरणा व तेज निहित होने का भाव ही स्वीकार्य है और इस सौन्दर्य की साधना वस्तु या कला के माध्यम से होती है।

भारत में कला का रूप सत्यम है। कला का लक्ष्य शिवम है तथा अनुभूति सुन्दरम है अतः भारतीय सौन्दर्यदर्शन सर्वोकृष्ट है। सौन्दर्यशास्त्र के चिन्तन की प्रमुख विधियाँ या उपागम मुख्यतः 3 प्रकार के होते हैं :–

1. भाषायी विशलेषणात्मक
2. दृश्य प्रपंच्चयशास्त्रीय उपागम
3. अलग दुनिया का बनना

<u>1. भाषायी विश्लेषणात्मक</u> – सौन्दर्यशास्त्र के विधिवत् अध्ययन का जो प्रमुख उपागम है वह है भाषायी विश्लेषणात्मक। इसके प्रमुख उत्पादक है फ्रेगे रसेल मोर विटगैन्स्टाइन। इस उपागम की कुछ धारणाएँ हैं जो निम्नलिखित हैं –

दार्शनिक चिन्तन में अस्पष्टताओं से बचने के लिए दर्शन को विशिष्ट मतों का निरूपण और प्रतिपादन न मानकर भाषायी उपयोगों की विधियों का निरीक्षण मानना उपयुक्त है। **उदाहरण** – ''दर्शनशास्त्र एक विश्लेषण ग्रन्थ है'' व्याकरण की दृष्टि से इसमें कोई दोष नहीं है, इसका प्रत्येक शब्द अपने आप में सार्थक भी है परन्तु इस पूरे वाक्य का कोई अर्थ नहीं निकलता, लेकिन इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि निरर्थकता का बोध यहाँ प्रत्येक शब्द के अर्थ को समझने के बाद ही होता है। इसलिए भाषा में अर्थ का विश्लेषण करने वाली विधि अस्वाभाविक नहीं कही जा सकती है।

ताल संगीत की आत्मा है, जो व्यक्ति ऐसा कहता है वह इस तथ्य का ध्यान नहीं रखता कि ध्रुपद गान की आलाप में ताल नहीं होती फिर भी वह गान का विशिष्ट अंग है। राइल कहते हैं कि भाव किसी एक अर्थ में हर कला की रचना–प्रक्रिया से अविभाज्य रूप से जुड़ी होती है। एक कलाकृ ति किसी विशिष्ट भाव की अभिव्यक्ति किए बिना भी श्रेष्ट हो सकती है। परन्तु इस रचना प्रक्रिया में तल्लीनता, तनमयता और इस अर्थ में भाव होना आवश्यक है।

<u>2. दृश्य प्रपंच्यशास्त्रीय उपागम</u> – सौन्दर्य विषयक प्रत्ययों और समस्याओं का अध्ययन करने की विधि भी ऐसी है जो मनुष्य के अस्तित्व और जीवन की घटनाओं पर विशेष ध्यान देती है। दृश्य प्रपंच्यीय आगम का एक आग्रह यह है कि बिना किसी पूर्व मान्यता से प्रभावित हुए मानवानुभूति के वास्तविक तत्वों पर ध्यान देना प्रमुख कार्य है ना कि काल्पनिक तत्वों पर ध्यान देना दर्शन का प्रमुख कार्य है। इसकी अन्य धारणाओं में दो धारणायें प्रमुख हैं :–

1. ज्ञान की तुलना में सत्ता पर विचारण अधिक आवश्यक है।
2. चेतन्य मूलतः सभिप्राय होती है।

सौन्दर्यशास्त्र पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में वह शास्त्र है जिसमें कलाकार द्वारा प्रस्तुत कलाकृति को कला प्रेमी या कला मर्मज्ञ द्वारा प्रशंसात्मक भाव उत्पन्न हो। देखकर अथवा सुनकर कोई चित्र, मूर्ति या गायन या संगीत के प्रति उसका विवेचना, वैज्ञानिक पक्ष मुख्य रूप से भौतिक पक्ष का अध्ययन मात्र है। वह विचार करता है कि सौन्दर्य बोध किन कारणों व किन अवयवों से आनन्दानुभूति प्रदान कर रहा है, इसका अध्ययन सौन्दर्यशास्त्र के अन्तर्गत मानते हैं। वे ललित कलाओं के सभी पक्षों का सूक्ष्मता से अध्ययन करने को ही सौन्दर्यशास्त्र का विषय मानते हैं। सौन्दर्य को सुन्दर ही न मान कर मूल्य भी मानना हैं। वे इसे मूल्यांकन करने वाला विज्ञान मानते हैं।

2.6 संगीत में सौन्दर्यात्मक तत्व

संगीत सम्बन्धी किसी भी प्रस्तुति का आकलन हम किस आधार पर करते हैं यह पूर्ण रूप से उन तत्वों में निहित हैं जो कि हमारे सामान्य सौन्दर्य बोध पर प्रभाव डालता है। प्रायः कुछ प्रस्तुतियाँ या प्रदर्शन अच्छे, कुछ सामान्य तथा कुछ निम्न स्तर के कहे जा सकते हैं। हमारे ग्रंथों में कलाकार के गुण, अवगुणों का वर्णन भी मिलता है। संगीत की आनन्ददायक प्रस्तुति प्रायः निम्न तथ्यों पर निर्भर करती है :—

1. राग — राग संगीत की महत्वपूर्ण कृति है। किसी भी राग में रचना, काव्य के अनुरूप हो यह आवश्यक है। राग में रंजकता होना आवश्यक है। संगीत दर्पण में राग की परिभाषा इस प्रकार दी गई है :—

योऽयं ध्वनि विशेषस्तु स्वर वर्ण विभूषितः।
रन्जको जम चित्तानां स राग कथितो बुधैः।।

अर्थात जो स्वर, वर्ण से अलंकृत हो और श्रोता के चित्त में रंजकता उत्पन्न करता हो, वह राग है। राग को संगीत की आत्मा कहा गया है। राग द्वारा कलाकार राग की मुख्य नियमों के साथ—साथ भावों को भी व्यक्त करता है। अन्तर्मन में अनुभूत भावों को व्यक्त करने में सक्षम कलाकार ही राग की सुन्दर प्रस्तुति कर सकता है। भावों को व्यक्त करने में सहायक तत्वों के सम्बन्ध में विचार करने से हमें ज्ञात होता है कि राग द्वारा भावाभिव्यक्ति के लिए नाद, स्वर, श्रुति, वर्ण, अलंकार, स्थाय, गमक, मींड, कण, तान व काकु आदि के यथास्थान प्रयोग आवश्यक है।

राग के सौन्दर्य स्थल :—

- मींड — एक स्वर से दूसरे स्वर तक ध्वनि को बिना खंडित किए हुए जाना मींड कहलाता है। ये दो प्रकार की होती है — विलोम तथा अनुलोम। जब आरोहित क्रम में मींड का प्रयोग हो तो अनुलोम मींड तथा जब अवरोह क्रम में मींड का प्रयोग हो तो विलोम मींड। मींड राग के सौन्दर्य वर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।
- सूत — मींड का प्रयोग जब गज अथवा तरब के वाद्यों पर होता है तो उसे सूत कहते है।
- कण — जब स्वर लगाते है तो स्वर के आगे या पीछे के स्वर को बहुत कम मात्रा में छुने को कण लगाना कहते है। राग की रंजकता व सुन्दरता उत्पन्न करने के लिए इस तकनीक का प्रयोग होता है।
- आन्दोलन — स्वरों को कम्पित करना आन्दोलन कहलाता है।
- खटका — कण और खटके लगभग एक ही तकनीक है। अन्तर यह है कि खटके में जिस स्वर का कण लगाया जाता है वह आघातपूर्ण होता है।
- मुर्की — राग में दो—तीन या अधिक स्वरों का अत्यन्त तेजी से वक्र प्रयोग मुर्की कहलाता है। टप्पा व ठुमरी गायन शैलियों में इसका अधिक प्रयोग किया जाता है।

2. नाद — संगीतोपयोगी ध्वनि (रंजकता) की विशेष उपयोगिता व उसका प्रयोग नाद के अन्तर्गत होता है। संगीत रत्नाकर में शारंगदेव ने नाद के लिए कहा है :—

नादमे व्यजाते वर्णः पदं वर्णात्पदाद्वचः
वचसो व्यवहारोयं नादाधीनमतो जगत

सम्पूर्ण विश्व नाद के आधीन है। क्योंकि नाद से वर्ण, वर्णों से शब्द व वाक्य, वाक्य से व्यवहार होता है। पूरा विश्व नाद पर ही टिका हुआ है। नाद के सम्बन्ध विस्तृत जानकारी आपको आगे की इकाईओं में स्पष्ट होगी। जैसे :—

1. नाद का ऊँचा व नीचापन
2. नाद का छोटा व बड़ापन
3. नाद की जाति

नाद की इन सभी विशेषताओं से भावों को व्यक्त करने सहायता प्राप्त होती है। नाद की इन विशेषताओं में कई प्रकार की ध्वनियाँ जो सांगीतिक होती हैं सुनाई देती हैं। ये ध्वनियाँ ही भावों को व्यक्त करने में सक्षम होती है। यही ध्वनियाँ जो प्रयोग की जाती, इन्हें श्रुति कहते हैं।

<u>3. श्रुति</u> — सूक्ष्म व स्पष्ट ध्वनियाँ ही 'श्रुति' हैं। संगीत ग्रन्थ 'संगीत पारिजात' में पं0 अहोबल ने लिखा है—

श्रुतयः स्युः स्वरा मिन्ना श्रावणत्वेन हेतुना।
अहिकुराऽलतत् तत्र भेदोक्ति शास्त्रसम्मता।।

अर्थात जो ध्वनि सुनाई देती है वह 'श्रुति' कहलाती है। विद्वानों ने इन श्रुतियों के बाईस (22) भेद बताये हैं। श्रुति राग सौन्दर्य का आधार है। इन श्रुतियों का यथोचित, यथास्थान प्रयोगकर कलाकार भावों को व्यक्त करते हैं।

<u>4. स्वर</u> — बाइस श्रुतियों में ही विद्वानों द्वारा स्वर स्थापित किए गए हैं। राग का निर्माण स्वरों से ही होता है। जो ध्वनि स्थिर, स्पष्ट और श्रुति मधुर हो वह स्वर कहलाती है। *"स्वयं राजन्ते इति स्वराः।"* अर्थात स्वर वे हैं जो स्वयं शोभित होते है। स्वरों को अधिक रंजक बनाने के लिए सप्तक की रचना हुई। गीत के तीन अंग माने गये है — स्वर, ताल और पद। इन तीनों अंगों में से स्वर प्रमुख है।

<u>5. सप्तक</u> — सौन्दर्य की वृद्धि के लिए सात स्वरों को तीन सप्तकों में विभाजित किया गया — मन्द्र, मध्य व तार। सप्तकों के स्वरों का प्रयोग कर भावों को व्यक्त करने में अधिक प्रवीणता आती है और सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है। अलग—अलग रागों की बढ़त अलग—अलग सप्तकों में होती है और इन्हीं के अनुसार राग में सौन्दर्य उत्पन्न होता है।

<u>6. आलाप</u> — राग के विस्तार हेतु आलाप किया जाता है। आधुनिक आलाप को हमारे प्राचीन ग्रंथों में वर्णित रूपकालाप, रूपक तथा आलाप्ति के समकक्ष मान सकते हैं। राग के आरंभ से प्रत्येक स्वर के महत्व व राग के नियमानुसार विस्तार करने की प्रक्रिया आलाप कहलाती है। विलम्बित, मध्य व द्रुत लय में आलाप कर राग में सौन्दर्य वृद्धि की जाती है।

<u>7. तान</u> — तानों का प्रयोग प्राचीन ग्रन्थों में विस्तार से वर्णित है। तान का प्रयोग राग आकृति को स्पष्ट कर सुन्दर बनाती है। तानों के विभिन्न प्रकार राग के भावों को स्पष्ट करते हैं। गमक, वक्र व सपाट तान आदि से राग की आकृति स्पष्ट होती है, जिससे राग का सौन्दर्य झलकता है। मध्य व द्रुत लय में तानों का यथोचित प्रयोग, राग में भाव उत्पन्न कर सौन्दर्य वृद्धि करता है।

<u>8. वर्ण</u> — गायन की क्रिया को 'वर्ण' से जाना जाता है, वर्ण चार प्रकार से समझा जा सकता है :—

1. स्थायी वर्ण
2. आरोही वर्ण
3. अवरोही वर्ण
4. संचारी वर्ण

इन वर्णों से राग का सौन्दर्य बढ़ाया जाता है। वर्ण द्वारा ही आलाप, तान तथा गीत रचना को सुन्दर बनाया जाता है। वर्णों के तरह–तरह के प्रयोग से राग का सौन्दर्य स्पष्ट होता है और कलाकार भावों को व्यक्त करने में समर्थ होता है।

9. अलंकार – वर्णों को तरह–तरह से प्रयोग करने पर अलंकार बनते हैं। वर्णों को सुन्दर रूप में क्रमपूर्वक गाने–बजाने से अलंकारों का निर्माण होता है। भावों को प्रदर्शित करने के लिए अलंकारों का प्रयोग कलाकार करता है।

विशिष्ट स्वर संदर्भअलंकार प्रचक्षते।

वर्णों को क्रम से संयोजित करने पर अलंकारों की रचना होती है जो सौन्दर्य को बढ़ाती है। प्राचीन ग्रंथकारों में भरत, शारंगदेव, अहोबल आदि ने अलंकारों पर सौन्दर्य वृद्धि हेतु विशेष बल दिया है। अलंकारों से गायन, वादन की रचनाओं का श्रृंगार किया जाता है तो वह सुन्दरतम हो जाती है। अलंकारों के प्रयोग से राग व रचना का सौन्दर्य बढ़ जाता है और प्रदर्शन प्रभावी होता है।

10. गमक – **स्वरस्य कंपो गमकः श्रोतृचित्त सुखावहः।** अर्थात स्वर का वह कंपन जो श्रोता चित्त को सुख प्रदान करे गमक कहलाता है। स्वर की अपनी श्रुति से, साथ के स्वर की श्रुति तक आना जाना गमक है। अन्य श्रुति की छाया मुख्य स्वर की श्रुति में प्रतीत होने से वह सुखद लगता है। गमक का प्रयोग सूक्ष्म है परन्तु सुन्दर है। कलाकार के अभ्यास व चिन्तन द्वारा ही राग में गमक के प्रयोग से सौन्दर्य वृद्धि होती है। गमक से स्वरों के बीच निरंतरता व अखण्डता प्रस्तुति को सुन्दर बनाती है तथा राग का स्वरुप भी स्पष्ट होता है।

11. स्थाय – पं0 शारंगदेव के अनुसार :–

रागस्याक्यः स्थायो।

राग का मुख्य अवयव स्थाय है। स्वरों का विस्तार राग की पहचान, प्रयुक्त स्वरों का महत्व स्थाय में ही समझा जा सकता है। प्रायः गायक–वादक की निपुणता स्थाय के श्रवण से ही आँकी जाती है। राग का पूरा स्वरूप, विभिन्न अंलकारों, गमक के प्रकारों से सुसज्जित कर प्रस्तुत करने से स्पष्ट होता है।

हमारी गायन शैलियों – ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी आदि में भी स्थायी को विस्तृत रूप देकर प्रस्तुत करने की परम्परा, इसी स्थाय के अनुसार चल रही है। किसी भी प्रदर्शन में गुणी कलाकार स्थाय को विस्तार से प्रस्तुत करता है और प्रभावी बनाते हुए भाव पक्ष को प्रस्तुत करता है, जो सौन्दर्य के लिए अत्यावश्यक है।

इसी प्रकार ताल व लय का स्पष्ट व यथोचित प्रयोग व स्वरों को ताल व लय से संमिश्र व संयोजित कर सौन्दर्य वृद्धि करता है। ताल को आधार या प्रतिष्ठापक कहा है। ताल के दस प्राणों– काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति तथा प्रस्तार को ध्यान में रखकर जो भी रचना प्रस्तुत की जायेगी वह अवश्य सौन्दर्य वृद्धि करेगी। सौन्दर्यात्मक तत्वों में गीत रचना या बन्दिश का महत्व उल्लेखनीय है। बन्दिश का राग नियमों के साथ–साथ ताल पक्ष व सुन्दर–कर्णाप्रिय स्वर संयोजनों पर आधारित होना आवश्यक है। गीत श्रृँगारिक, करूण आदि शब्दों व भावों से परिपूर्ण हो

तो सुगमता से बोधगम्य होता है और सौन्दर्य की वृद्धि करता है। अतः बन्दिश की रचना में मूल तत्वों राग, ताल, शब्दों के भाव–अर्थ का ध्यान रखा जाता है।

प्राचीन व वर्तमान संगीत विद्वानों ने बन्दिशों के महत्व व प्रभाव पर ध्यान केन्द्रित कर कई लोकप्रिय बन्दिशें तैयार की है। वर्तमान विद्वान भी सभी पक्षों को ध्यान में रख कर गीत रचना कर रहे हैं। आज जहाँ पुरानी व घरानेदार बन्दिशों का प्रयोग हो रहा है वहीं नवीन रचनाएँ भी सुनने को मिल रही हैं। आज विशेषकर शब्द रचना पर भी ध्यान दिया जा रहा है।

2.7 सौन्दर्य के आवश्यक तत्व

सौन्दर्य के कुछ आवश्यक तत्वों पर हम विचार करेंगे जो कला में सौन्दर्य उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। संगीत में इन तत्वों का प्रयोग कर सौन्दर्य निष्पत्ति सम्भव है।

<u>1. संगठन व संयोजन</u> – कलाओं का प्रमुख सौन्दर्य तत्व अनेकता में अभिर्भाव है, यह कला के सभी तत्वों के सम्मिलित प्रयोग से सम्भव है। संगठन व संयोजन का संगीत कला में बहुत महत्व है। स्वरों को लगाने का तरीका; वादी, सम्वादी आदि स्वरों का उचित प्रयोग, आरोह–अवरोह में लगने वाले स्वर इत्यादि से राग के स्वरूप को सुन्दर बनाया जाता है। किसी राग का वादी स्वर पूर्वांग में होता है तथा सम्वादी उत्तरांग में होता है, दोनों एक साथ पूर्वांग या उत्तरांग में नहीं होते हैं। इन्हीं विशेषताएं के कारण राग प्रस्तुतिकरण रोचक बनता है। यदि किसी राग में किसी स्वर के दो रूप प्रयोग किए जाते हैं तो आरोह में उस स्वर का शुद्ध रूप व अवरोह में कोमल रूप प्रयोग किया जाता है। राग के स्वरों में संयोजन का कार्य, पूर्वांग–उत्तरांग की यही विशेषता का है। एक ही राग की विभिन्न बन्दिशें राग के विभिन्न स्वरों से गाई/बजायी जाती है व विभिन्न तालों में होती है, फिर भी उनको सुनने पर उस राग विशेष का ही स्वरूप दिखाई पड़ता है।

<u>2. नवीनता</u> – कालिदास के अनुसार नवीनता, सौन्दर्य उत्पत्ति का आवश्यक तत्व है। संगीत के नियम सार्वभौम है, लेकिन संगीतकार अपनी कल्पना शक्ति के माध्यम से उसमें नवीनता पैदा करता है। उदाहरण के लिए एक ही राग को अगर कोई संगीतकार बार बार प्रस्तुत करें, तो हर बार उसमें नवीनता सुनाई देती है। या हम कहें कि एक ही राग अलग–अलग कलाकारों द्वारा प्रस्तुत किया जाए तो प्रत्येक कलाकार का उस राग को प्रस्तुत करने का ढंग अलग होगा। वह उसमें अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर विभिन्न एवं नवीन स्वर समुदायों का प्रयोग करेगा, अपने घराने की शैली की विशेषताओं को उसमें उजागर करेगा तथा अपनी साधना द्वारा उसे एक नवीन रूप देगा। इस नवीनता से ही विविधता जन्म लेती है।

<u>3. सम्पूर्णता</u> – किसी भी कला में पूर्णता होने पर ही सौन्दर्य की अनुभूति होती है। चाहे वह वास्तुकला हो, मर्तिकला हो, चित्रकला हो या फिर संगीतकला, ये तभी सुन्दर लगेगी जब यह पूर्ण हो अर्थात अपने सभी तत्व लिए हो। संगीत में अगर सिर्फ बन्दिश ही गाए जाएं तो श्रोताओं को सौन्दर्यानुभूति नहीं होगी। पूर्ण सौन्दर्यानुभूति प्राप्ति के लिए आलाप, बन्दिश की स्थाई–अन्तरे सहित प्रस्तुति, तानें आदि तत्व होना आवश्यक है। किसी भी कला के तत्वों को व्यवस्थित करके ही संपूर्णता प्राप्त की जा सकती है।

<u>4. संतुलन</u> – इस पृथ्वी पर हर वस्तु में संतुलन होना आवश्यक है अन्यथा उसके अस्तित्व को खतरा रहता है। कला और सौन्दर्य के मध्य संतुलन सामान्य तत्व है। किसी भी कला के समस्त

तत्वों का उचित मात्रा में प्रयोग होने पर ही संतुलन की स्थिति सम्भव है और तभी सौन्दर्यानुभूति भी सम्भव है। संगीत की सभी विधाओं गायन, वादन तथा नृत्य में संतुलन अत्यन्त आवश्यक व महत्वपूर्ण है। संगीतकारों द्वारा प्रस्तुत प्रत्येक प्रस्तुति में संतुलन होना आवश्यक है। गायन/वादन में एक सप्तक से दूसरे सप्तक में जाने में बन्दिश में, आलाप में, तानों में, ताल आदि में जब संतुलन रखा जाता है तभी प्रस्तुति सुन्दर लगती है। संतुलन स्थापित करने में ताल का महत्वपूर्ण स्थान है। तबला वादन में भी तबला वादक विभिन्न लयों में रचनाओं को बजाता है, ठेकों की लयकारी दिखाता है और साथ ही साथ मूल लय के साथ भी संतुलन बनाए रखता है, अतः हम कह सकते है कि संतुलन, कला में सौन्दर्य उत्पन्न करने हेतु आवश्यक तत्व है।

5. अनुपात – विभिन्न कलाओं में संतुलन, सौन्दर्यानुभूति के लिए आवश्यक है और संतुलन के लिए कलाओं (वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला व संगीतकला) के सभी तत्वों का एक निश्चित व सही अनुपात में होना आवश्यक है। अनुपात से ही अनुकूलता व स्वाभाविकता प्रतीत होती है। संगीत (गायन, वादन व नृत्य) में सौन्दर्यवर्द्धन हेतु इसके विभिन्न तत्वों का सही अनुपात में होना जरूरी है। राग में वादी स्वर, सम्वादी व अनुवादी स्वरों की अपेक्षा अधिक लगता है; सम्वादी स्वर, अनुवादी स्वर की अपेक्षा अधिक प्रयोग होता है। राग स्वरूप निर्धारण में इस अनुपात का महत्वपूर्ण स्थान है। अगर किसी राग में वादी स्वर का प्रयोग कम कर सम्वादी का प्रयोग अधिक किया जाए तो राग ही बदल जाएगा। उदाहरण– देशकार और भूपाली। कलाकार गायन शैलियों के माध्यम से भी उक्त शैली के तत्वों के निश्चित अनुपात को कायम रखते हुए अपनी प्रस्तुती देता है। जैसे ध्रुवपद में आलाप में 3–5 चरण होते हैं ख्याल में नहीं। अगर ख्याल में ध्रुवपद की तरह चरणों में आलाप किया जाए तो ख्याल गायन शैली की अपनी विशेषताएं दृष्टिगोचर नहीं होगी और ख्याल का जो सौन्दर्य है उसकी अनुभूति हम नहीं कर पाएंगे। ताल में भी संतुलन, उसके विभागों का सही अनुपात में होने से ही सम्भव है।

6. विरोधाभास – कलाओं के तत्वों में विरोधाभास दिखाई देने पर भी उनके मूल में संगति दिखाई देती है। कभी–कभी विरोधाभास से कला या उसके तत्वों के अर्थ को अधिक स्पष्ट करने व उसके सही रूप को प्रकट करने में सहायता मिलती है। एक ही थाट के दो रागों की प्रकृति में भिन्नता पाई जाती है। उदाहरण – मारवा थाट का मारवा यदि गंभीर प्रकृति का है तो सोहनी चंचल प्रकृति का। गायन वादन या नृत्य की विभिन्न क्रियाओं को इस प्रकार दर्शाया जाता है कि उनमें संगति दिखाई देती है। संगीत में सौन्दर्य उत्पन्न करने में यह विशेषता आवश्यक है। किसी राग के स्वर (वादी, संवादी, अनुवादी व विवादी) अपनी प्रकृति व अनुपात में भिन्नता होने पर भी, मिलकर राग के स्वरूप को प्रकट करते हैं। कई राग दो या दो से अधिक रागों के मिश्रण से बनते हैं किन्तु उनकी प्रस्तुति के वक्त वे एक राग के स्वरूप को प्रदर्शित करते हैं। संधिप्रकाश रागों के दो रूप प्रातः काल व सांयकाल में परिणित हों तो विभिन्न प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

7. व्यवस्थित क्रम – प्रत्येक कला की रचना तब सम्भव है जब उसके अव्यव व्यवस्थित क्रम में हों। काव्य और संगीत कला विविध रूप क्रम से अग्रसर होती है। राग प्रस्तुतीकरण में आलाप, राग में प्रयुक्त स्वरों की बढत, बन्दिश, तानें आदि सब व्यवस्थित क्रम में अग्रसर होते हैं। कलाकार राग के तत्वों को व्यवस्थित क्रम में प्रस्तुत कर राग का स्वरूप दर्शा सकते हैं जिससे श्रोता को सौन्दर्यानुभूति होगी। दूसरे शब्दों में काव्य व संगीत कला की गतिशीलता सौन्दर्य निर्माण में सहायक होती है।

8. स्थायित्व – कलाओं में सौन्दर्य उत्पत्ति के लिए स्थायित्व का गुण आवश्यक है। संगीत की यह विशेषता है कि राग के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता अगर वह राग किसी गायक या वादक द्वारा गाया या बजाया जाए। प्रस्तुतीकरण का ढंग अलग–अलग हो सकता है किन्तु मूल स्वरूप हमेशा वही रहता है। यही स्थायित्व का गुण है कि विभिन्न बंदिशों व तालों में होने पर भी राग का स्वरूप स्थिर रहता है। राग का स्वरूप बंदिश, कलाकार, स्थान आदि की भिन्नता होने पर भी वही रहता है।

9. विविधता – कलाओं के सौन्दर्य उत्पत्ति के प्रमुख लक्षणों में से विविधता महत्वपूर्ण लक्षण है। अपनी प्रतिभा से कलाकार, कलाकृति को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत कर सौन्दर्य बोध कराता है। संगीत में एक ही राग में अलग–अलग गायकों द्वारा गाए जाने या विभिन्न वाद्यों पर बजाए जाने पर विविधता के दर्शन होते हैं। संगीत में यह विविधता सौन्दर्यानुभूति कराती है एवं एकरूपता से भी बचाती है।

10. अलंकार – अलंकार अर्थात आभूषण सौन्दर्य उत्पत्ति के आवश्यक तथ्यों में से एक है। ललित कलाओं में सौन्दर्य उत्पादन के लिए अलंकार की आवश्यकता होती है। मूर्तिकला में मूर्ति को विभिन्न रंगों व आभूषण आदि से सजाया जाता है। काव्य में उपमा, यमक आदि अलंकारों का प्रयोग किया जाता है। संगीत में अलंकार का महत्व दर्शाने हेतु नाट्यशास्त्र में वर्णित है–''जिस प्रकार चन्द्रमा के बिना रात्रि, जल के बिना नदी, पुष्प के बिना लता, श्रृंगार के बिना स्त्री शोभा नहीं देती, उसी प्रकार अलंकार के बिना गीत भी शोभा नही देता है,''। संगीत में स्वर, वर्ण ,मींड, गमक, मुर्की आदि अलंकारों से सौन्दर्य वर्धन सम्भव है।

11. जटिलता – जटिलता बुद्धि से सम्बन्धित है। संगीत में सौन्दर्य वर्धन के लिए विविध प्रकार की कठिन स्वर–संगतियों का प्रयोग किया जाता है। तबले की कुछ बंन्दिशों में क्लिष्ट बोलों का चयन किया जाता है। इस प्रकार ये जटिल रचनायें सीधी रचनाओं से अधिक प्रभाव उत्पन्न करेंगी, परन्तु इन जटिलताओं को संगीत के नियम में होना आवश्यक है।

2.8 सौन्दर्य विषयक मान्यताएं

पाश्चात्य वाङ्‌मय में प्रारम्भ से सौन्दर्य तत्व का व्याख्यान–विवेचन होता आया है। सौन्दर्यशास्त्र की सौन्दर्य विषयक मान्यताओं में मतभेद रहा है। प्रमुख रूप में सौन्दर्य विषयक मत के निर्धारण करने वालों के दृष्टिकोण को छः वर्गों में बांटा है :–

1. **अध्यात्मवादी दृष्टिकोण** – इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत प्लेटो, पलाटिनस, हीगेल, आगस्टीन, कांट आदि विद्वान आते हैं। इनके अनुसार सौन्दर्य ईश्वर का ही रूप है। वे मानते हैं कि ईश्वर में ही पूरी सृष्टि का सौन्दर्य विद्यमान है। हम अपने मन की आंखों से सौन्दर्य को देख सकते हैं। यह दृष्टिकोण भारतीय संस्कृति के बहुत निकट है। मानव आत्मा, उस परम तत्व (अपने मूल उद्‌गम) से मिलने के लिए उत्सुक रहती है। सौन्दर्य चेतना का रहस्य इसी आभिलाषा में छुपा है। इसका अर्थ है कि सौन्दर्य की भावना मूलतः एक आध्यात्मिक अनुभूति है। इस मत को मानने वाले सौन्दर्य को उसी रूप में देखते हैं जिस प्रकार भारत में सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम को। अर्थात् जो परम सत्य है वही ईश्वर है। सौन्दर्य प्राप्ति के लिए आत्मिक संतुष्टि की जरूरत है न की भौतिक साधन की। इस मत के पोषक मानते हैं कि ईश्वर में ही सम्पूर्ण सृष्टि का सौन्दर्य है अतः सौन्दर्यानुभूति के लिए परमात्मा से मिलन होता है तब अलौकिक सौन्दर्यानुभूति होती है।

2. **<u>बुद्धिवादी दृष्टिकोण</u>** – बुद्धिवादी दृष्टिकोण के पोषक सौन्दर्य को सीधे बुद्धि व विवेक से सम्बन्धित बताते है। इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत सेंट थामस, लाक एवं कोट प्रमुख हैं। इन विचारकों के अनुसार सौन्दर्य किसी पदार्थ या वस्तु से सम्बन्धित ना होकर बुद्धि से सम्बन्धित है। अर्थात् सौन्दर्य बुद्धि का गुण है। कांट के अनुसार सौन्दर्य का भौतिक अस्तित्व नहीं है। ये वास्तविक जगत की वस्तुओं से अलग है। कांट ने ही 6 ट्रांसडेण्टल एस्थेटिक्स की उद्भावना की। इस वर्ग के विद्वानों के अनुसार मनुष्य अपने बुद्धि या विवेक से जिस भी वस्तु, चीज को सुन्दर कहते हैं वही सौन्दर्य है। मानव मस्तिष्क, बुद्धि व चिन्तन के द्वारा परख कर सौन्दर्यानुभूति करता है तथा इसके रूप और रंग की विशेषता और उपयोगिता नहीं रहती।

3. **<u>रूपवादी दृष्टिकोण</u>** – इस मत के पोषक मानते हैं सौन्दर्य का सम्बन्ध ईश्वर व बुद्धि से ना होकर भौतिक, वस्तुनिष्ठ या विषयगत है। उनके अनुसार सौन्दर्य पदार्थ या वस्तु में स्थित है। यह देखने वाले को प्रभावित करता है जिससे उसे सौन्दर्यानुभूति होती है। यह ना तो कोई आध्यात्मिक जगत से सम्बन्धित है और ना ही बुद्धि या चिन्तन सम्बन्धी। इस वर्ग में अरस्तु, बर्क, विलियम टामसन, पार्कर आदि विद्वान आते हैं। वे भौतिक जगत की वस्तु के विभिन्न रूपगत तत्वों को सौन्दर्य का आधार मानते हैं। वे मानते हैं कि वस्तु की रूपगत विशेषताओं से ही सौन्दर्य का अस्तित्व है। वही वस्तु सुन्दर है जिसका रूप, रंग व आकृति पूर्णरूपेण व्यवस्थित हो। यूनान में सर्वश्रेष्ठ मानव को ईश्वर की उपाधि दी गई है। अरस्तु प्रथम सौन्दर्यशास्त्री फिर आध्यात्मिकवादी थे। अरस्तु ने कला को प्रकृति का अनुकरण मानकर सौन्दर्य के बाह्य रूप को प्रमुखता प्रदान की। उनके अनुसार सौन्दर्य के प्रमुख तीन अंग माने हैं:–

1. क्रमबद्धता (Order) 2. समता (Symmetry) 3. औचित्य (Definite Limitation)
अरस्तु के अनुसार सौन्दर्य के तीन तत्व हैं:–

1. सम्मात्रा (Symmetry)
2. निश्चित व्यवस्थित क्रम (Orderly Arrangement)
3. निश्चित आकार (Certain magnitude)

वर्क के अनुसार आकाशीय सूक्ष्मता, कोमलता, वर्ण दीप्तिता तथा शुद्धता द्वारा ही सौन्दर्य प्रदर्शित किया जा सकता है।
लार्ड केमीज के अनुसार सौन्दर्य के रुप की विशेषता के लिए निम्नलिखित तत्व आवश्यक है :–

1. क्रमबद्धता(Regularity)
2. समरुपता(Uniformity)
3. अनुपात(Proportion)
4. संतुलन(Balance)

4- सादगी(Simplicity)

विलियम टामसन के अनुसार सौन्दर्य का निर्माण 6 मूल तत्वों से होता है :–

1. अनुपात(Proportion)
2. छाया(Shade)
3. रेखा(Line)
4. रंग(Colour)
5. वैचित्र्य(Variety)
6. चिकनापन(Smoothness)

इस मत के कुछ विद्वान सौन्दर्य को सिर्फ देखने का अनुभव मानते हैं और कुछ इसे पदार्थ का गुण।

5. <u>भाववादी दृष्टिकोण</u> – इस दृष्टिकोण से जो विचारक सम्बन्ध रखते हैं उनमें से मुख्य हैं– टॉलस्टाय, केरिट, हम्मान आदि। इन विद्वानों का मानना है कि कोई कला तब सौन्दर्यमय होगी जब उस कला का कलाकार अपने भावों को, कला के विभिन्न अवयवों (जैसे रंग, शब्द, ध्वनि आदि) के माध्यम से श्रोताओं/दर्शकों तक पहुँचा सके। इस स्थिति में कलाकार व प्रेक्षक में तादात्मय आवश्यक है। यही विचारधारा हमें भारतीय रस सिद्धान्त में देखने को मिलती है। वही कला सुन्दर कहलाएगी जो कलाकार, श्रोता/दर्शक के भावों में सामंजस्य स्थापित कर सके। इस मत के अनुयायी मानते हैं कि इसमें तीन गुण अवश्य होने चाहिए :–

1. वैयक्तिकता 2. स्पष्टता 3. सत्यता

विद्वान कल्पना और शैली का सौन्दर्यानुभूति का आवश्यक लक्षण मानते हैं।

6. <u>उपयोगितावादी दृष्टिकोण</u> – इस मत के विचारकों में मुख्य रूप से सुकरात का नाम आता है और वे सौन्दर्य के अस्तित्व को वस्तु की उपयोगिता में मानते हैं। वे कहते हैं कोई वस्तु तब सुन्दर है जब वह मानव जीवन के लिए किसी भी अर्थ में उपयोगी हो। वह वस्तु सौन्दर्यमय नहीं है जा उपयोगी नहीं हैं। अतः कह सकते हैं कि सौन्दर्य का महत्व वस्तु की उपयोगिता में है ना की उसके बाह्य रूप में। सुकरात प्रत्येक वस्तु का महत्व उसकी उपयोगिता की दृष्टि से लगाते थे। उदाहरण के लिए यदि किसी भी प्रकार का संगीत श्रोता को दिल को ना छू सकें तो वह सौन्दर्य की श्रेणी में नहीं आता। अर्थात् उपयोगिता में ही सौन्दर्य निहित है।

7. <u>मूल्यवादी दृष्टिकोण</u> – इस दृष्टिकोण के विचारक मानते हैं कि किसी वस्तु का सौन्दर्य उसके मूल्य से सम्बन्धित है। समाज के व्यक्तियों में संस्कार, शिक्षा, वातावरण एवं सत्रय का, वस्तु के मूल्य निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान रहता है। यह सब चीज देशकाल परिस्थिति के अनुसार भिन्न–भिन्न होगीं।

2.9 सौन्दर्यशास्त्र व अन्य शास्त्र

<u>1. दर्शन शास्त्र</u> – भारतीय दर्शन शास्त्र की एक शाखा होते हुए भी सौन्दर्यशास्त्र दर्शनशास्त्र से भिन्न है। सौन्दर्यशास्त्र में हम सौन्दर्य तत्व, कलाकार, कला रासिक आदि सम्बन्धित तत्वों का अध्ययन करते हैं। जबकि दर्शनशास्त्र में आत्मा, जीव, बाहय जगत, प्रकृति, पुरूष, धर्म, मोक्ष आदि का अध्ययन करते हैं। दर्शनशास्त्र व सौन्दर्यशास्त्र की समानता यह है कि दोनों शास्त्रों का लक्ष्य

परम सुन्दर को रूपायित करना है। सर्वोत्तम कलानुभूति को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया। इसी स्थल पर भारत वर्ष के दर्शनशास्त्र व सौन्दर्यशास्त्र में समानता है।

3. **मनोविज्ञान** – मनोविज्ञान के शास्त्र में भिन्नता यह है कि मनोविज्ञान समस्त अनुभव जगत् के सन्दर्भ में विचार करता है तथा सौन्दर्यशास्त्र कलागत अनुभव के सन्दर्भ में। मनोविज्ञान में मन के भावों, मनोविकारों, मूल प्रवृत्तियों आदि का अध्ययन किया जाता है जबकि सौन्दर्यशास्त्र में मानव मन की सूक्ष्म सौन्दर्य भावना व सौन्दर्यानुभूति का अध्ययन किया जाता है।

4. **कलाशास्त्र** – कला शास्त्र के अन्तर्गत हम चित्रकला, वास्तुकला संगीतकला आदि के सर्जक तत्वों, रचना प्रणाली तकनीकी, कला प्रशिक्षण, कला विशेषज्ञों का योगदान, कलाकार के विशेष गुणों का अध्ययन करते है, जबकि सौन्दर्यशास्त्र में सौन्दर्य पक्ष ही सार्वाधिक रहता है। मुख्यतः ललित कलाओं के सभी सौन्दर्य पक्षों का अध्ययन सौन्दर्यशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1) सौन्दर्य शास्त्र के सम्बन्ध में भारतीय विद्वानों की क्या अवधारणा है ?
2) पाश्चात्य विद्वानों का सौन्दर्यशास्त्र के विषय में क्या मत है ?
3) भारतीय संगीत में सौन्दर्य—बोध से आप क्या समझते हैं ?
4) 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' की व्याख्या कीजिए।

2.10 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप भारतीय व पाश्चात्य संगीत में सौन्दर्यशास्त्र के महत्व को जान चुके होंगे। भारतीय चिन्तक सौन्दर्यानुभूति को आन्तरिक मानते हैं। इन्द्रियों में प्राप्त सौन्दर्य बोध को ग्रहण कर अन्तरात्मा को सुख प्राप्त होता है वही सौन्दर्यशास्त्र में अध्ययन योग्य है। संगीत में मुख्य रूप से श्रवणेन्द्रियों से जो आनन्दानुभूति हमारे मन—मस्तिष्क को होती है उसके कारकों का अध्ययन हम सौन्दर्यशास्त्र में करते हैं। पाश्चात्य संगीत विचारक इसे विज्ञान के समकक्ष रख कर अध्ययन करने का विचार रखते है। भारतीय सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की अवधारणा के ही समीप पाश्चात्य विचारकों के मतों में समानता है। मुख्य अवयव जो सौन्दयानुबोध के लिए आवश्यक है कलाकार, कलाकृति व कला रसिक जनों में समान होने से ही सौन्दर्यानुभूति होती है। सौन्दर्यशास्त्र के अन्तर्गत हम इन्हें कारक तत्वों का अध्ययन करते है। सौन्दर्य बोध व पुनः आनन्दानुभूति के सम्बन्ध में मुख्य अन्तर यह है कि भारतीय विचारक इसे मात्र आन्तरिक सुख का प्रतिफल मानते हैं। यह हमारे मन, मस्तिष्क को सुख प्रदान करने वाला है, वहीं पाश्चात्य विचारक इसे इन्द्रियों को आनन्द प्रदान करने वाला मानते हैं।

2.11 शब्दावली

- पाश्चात्य – पाश्चिम के देशों में प्रचलित या पश्चिमी देशों से सम्बन्धित।
- रंजकता – आकर्षित कर इन्द्रियों को अच्छा लगने वाला गुण।
- आनन्दानुभूति – आनन्द (सुख) का अनुभव।
- शास्त्रज्ञ – शास्त्र को जानने वाला।

2.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, प्रो0 स्वतन्त्र, *सौन्दर्य, रस व संगीत,* अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
2. शास्त्री, श्री बाबूलाल शुक्ल(सम्पादक एवं व्याख्याकार), भरत(मूल ग्रन्थकार), *नाट्यशास्त्र अध्याय – 28,* चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
3. जौहरी, सुश्री सीमा, *संगीतायन,* राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
4. माथुर, सुश्री मीरा, *संगीत परामर्श –2।*
5. जोशी, स्व0 पं0 भोला दत्त, *संगीत शास्त्र* ।

2.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वसन्त, *संगीत विशारद,* संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. चौधरी, डा0 सुभाष रानी, *संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त, क*निष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

2.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सौन्दर्य शास्त्र क्या है? भारतीय विचारकों के इस शास्त्र से सम्बन्धित मत क्या है? बताइए।
2. भारतीय शांस्त्रीय संगीत की तीनों विधाओं में सौन्दर्यानुभूति पर विस्तार पूर्वक लिखिये।
3. पाश्चात्य विचारकों की सौन्दर्य शास्त्र के प्रति अवधारणा को समझाइये।

इकाई 3 – संगीत की व्याख्या भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 नाट्यशास्त्र का परिचय
3.4 नाट्यशास्त्र के 28—33 अध्याय
3.5 गान्धर्व का स्वरूप
3.6 स्वर, ग्राम—मूर्च्छना व श्रुति
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रदर्शन कला—संगीत में स्नातकोत्तर, (एम0पी0ए0एम0—501) पाठ्यक्रम की तीसरी इकाई है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप रस, लय व छन्द को समझ चुके होंगे तथा संगीत में सौन्दर्य उत्पन्न करने में रस, लय व छन्द के महत्व को भी जान चुके होंगे। आप सौन्दर्य के सम्बन्ध में भारतीय विद्वानों तथा पाश्चात्य विद्वानों के मत से भी परिचित हो चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार संगीत के पहलुओं पर विचार किया गया है। भरत नाट्यशास्त्र का रचना काल ठीक—ठीक ज्ञात नहीं है। संगीत में इसे पॉचवा वेद भी कहा जाता है। भरत से पूर्व भी संगीत के विद्वान हुए हैं जिनका नाम भरत नाट्यशास्त्र में मिलता है। इस इकाई में भरत के समय के संगीत का भी वर्णन किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप नाट्यशास्त्र में वर्णित संगीत के विभिन्न आवश्यक तत्वों से परिचित हो सकेंगे। इन तत्वों का भारतीय शास्त्रीय संगीत में क्या और कितना महत्व है यह भी आप इस इकाई से समझ सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :—

- भरत से पूर्व के संगीत के प्राचीन इतिहास व शास्त्र से सम्बन्धित ज्ञान को जान सकेंगे।
- नाट्यशास्त्र में वर्णित संगीत के विभिन्न आवश्यक तत्वों से परिचित होकर आज के परिप्रेक्ष्य में उनकी सार्थकता व प्रासंगिकता सिद्ध कर सकेंगे।
- भरत काल में संगीत की स्थिति, उपयोगिता एवं विकास क्रम को भी समझ सकेंगे।

3.3 नाट्यशास्त्र का परिचय

संगीत के प्राचीनतम् ग्रन्थों में केवल एक मात्र भरत का नाट्यशास्त्र उपलब्ध है। उसमें विस्तृत रूप से वर्णित संगीत के सैद्धान्तिक व परिभाषिक तथा तकनीकी शब्दावली का अकाव्य ज्ञान का भण्डार है। नाट्यशास्त्र में मुख्यतः नाटक, अभिनय, मंच आदि से सम्बन्धित पूर्ण विवरण तो मिलता ही है साथ ही 28 वें अध्याय से 33 वें अध्याय तक संगीत के हर पक्ष का विस्तार से वर्णन किया गया है। चूँकि नाट्य में संगीत का महत्व शास्त्रकार अच्छी तरह से जानते थे फलतः संगीत की सूक्ष्मति सूक्ष्म पक्ष को अछूता नहीं छोड़ा गया है। विस्तार से संगीत के हर पक्ष को अध्ययन हेतु सुगम बनाया गया है। भरत ने भारत वर्ष की प्राचीन नाट्य विधा व नाटय के सहयोगी संगीत(गायन, वादन व नृत्य विधा) को नाट्यशास्त्र ग्रन्थ के द्वारा आज तक जीवित रखा हुआ है। जहां भी नाट्य या संगीत की चर्चा होगी नाटयशास्त्र का उल्लेख वहाँ अवश्य होगा।

भरत का नाटयशास्त्र एक ऐसी कड़ी है जिसके अध्ययन से आपको ज्ञात हो सकेगा कि भरत से पूर्व के संगीतकारों तथा विद्वानों की रचनाओं, विचारों या उनकी कृतियों में क्या था? भरत से पूर्व के संगीत विद्वानों के जन्म स्थान के सम्बन्ध में, जन्म का समय तथा रचना काल का समय ज्ञात नहीं हो सका है। केवल अनुमान से उन्हें भरत से पूर्व का माना गया है। वेदों की रचना के बाद से भरत कृत नाटयशास्त्र के रचना काल तक संगीत के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य हुआ है। भरत के नाटयशास्त्र में संगीत के विस्तृत ज्ञान का जो विवरण मिलता है वह उपरोक्त बात को प्रमाणित करता है। इस मुख्य कारण से ही नाटयशास्त्र को संगीत का वेद या पॉचवा वेद कहा जाता है।

3.4 नाट्यशास्त्र के 28 से 33 अध्याय

नाट्यशास्त्र के छह अध्याय 28–33 तक संगीत से सीधा संबंध रखते हैं। 28वें अध्याय में वाद्यों के चार भेद, स्वर, श्रुति, ग्राम–मूर्च्छनाएं, 18 जातियां; उनके ग्रह, अंश, न्यास, इत्यादि का विवरण है। 29वें अध्याय में जातियों का रसानुकूल प्रयोग तथा विभिन्न प्रकार की वीणाएँ और उनकी वादन विधि दी गई है। 30वें अध्याय में सुषिर वाद्यों का वर्णन; 31वें में कला, लय और विभिन्न तालों का विवरण; 32वें में ध्रुवा के पॉच भेद, छन्द विधि तथा गायक–वादकों के गुण दिए हैं और 33वें अध्याय में अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति, भेद, वादन–विधि, इनके वादन की 18 जातियां और वादकों के लक्षणों का वर्णन है।

भरत कृत नाट्यशास्त्र में गायन के साथ वाद्यों के समूह को आतोद्य कहा गया। आतोद्य के अन्तर्गत चार प्रकार के वाद्यों(तत्, सुषिर, अवनद्ध व घन) का विवरण मिलता है। इन्हें **कुतप** भी कहा है। आचार्य अभिनव गुप्त के अनुसार तत् व सुषिर वाद्यों का प्रयोग स्वर के लिए तथा अवनद्ध व घन वाद्यों का प्रयोग ताल के लिए किया जाता है। इन चारों वाद्यों के लक्षणों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है–

ततं तन्त्रीकृतं ज्ञेयमव नद्धं तु पौष्करम्।
घनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरों वंश उच्यते।। नाट्यशास्त्र 28/2

भरत का यह वर्गीकरण वादन क्रिया पर आधारित है इसलिए यह वर्गीकरण मौलिक कहा जा सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि प्राचीन युग में विकसित वाद्यों के प्रकारों को देखते हुए महर्षि भरत का वर्गीकरण सर्वथा उचित तथा पर्याप्त प्रतीत होता हैं। उनके अनुसार –

तंत चैवावनद्धं च घनं सुषिरमेंव च।
चतुर्विधं लु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणन्वितम्।। नाट्यशास्त्र 28/1

वाद्य यंत्र की बनावट के आधार पर उनका वर्गीकरण नहीं किया गया। इन वाद्यों के अतिरिक्त नये वाद्यों का भी प्रचलन शुरु हुआ। वाद्यों के निर्माण की प्रक्रिया आज तक जारी है। एक ही वर्ग के विभिन्न वाद्यों की वादन शैली भी भिन्न–भिन्न होती है। भरत ने वीणा वादन के सहायक आदि अन्य उपकरणों के प्रयोग के आधार पर चार भेद बताए हैं – 1. विस्तार 2. करण 3. आविद्ध तथा 4. व्यंजन। इन सभी भेदों के पुनः अनेक प्रभेद बताए हैं। भरत ने नाट्यशास्त्र के 34वें अध्याय में वीणा के चार प्रकार दिए है तथा उनका वर्णन विभिन्न पक्षों से किया गया है – 1. चित्रा 2. विपच्चि 3. कच्छपी 4. घोषक। इन वीणाओं में तारों की संख्या अलग–अलग है। नाट्यशास्त्र के 30वें अध्याय में सुषिरातोद्य विधान है। हवा या फूँक से बजने वाले वाद्यों का भी वर्णन किया गया है। वंशी को भरत ने वेणुवाद्य कहा है।

एक श्लोक में गायन शब्द का उल्लेख है। गायकों के साथ चित्रा व विपंची नामक वीणा वादक होते थे। वे श्लोक में गायक, वादक व नाट्य (नृत्य से सम्बन्धित) को एक साथ विविध आकर्षण वलि प्रयोगों से 'अलात चक्र' के समान रसोत्पत्ति करनी चाहिए। अतः स्पष्ट है कि संगीत की परिभाषा नाट्य–शास्त्रानुसार, गीतं, वाद्यं तथा नृत्तं से हुई। 'नृत्तं मे नृत्य के साथ अभिनय भी है। कालान्तर में ''गीतं वाद्यं तथा नृतं त्रयं संगीतमुच्यते'' संगीत की इस परिभाषा से भी स्पष्ट हो जाता है।

भरत का नाटयशास्त्र का अठाइसवॉ अध्याय जिसे 'आतोद्य विधानाध्याय' कहा है। इसके अन्तर्गत स्वर, वाद्य तथा गीत का विस्तृत वर्णन किया गया है। अन्य अध्यायों में ताल, ध्रुवा और अवनद्ध वाद्यों का वर्णन किया गया है। नाट्य में सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिए आतोद्य प्रमुख सहायक है। कंठ (गायन) स्वरों के साथ उक्त वाद्यों के प्रयोग से सुन्दरता को बोध प्रबल होता है। अकेले कण्ठ या गायन पर्याप्त प्रभावी नहीं होता।

गायन वादन व नृत्य एक दूसरे के सहयोगी है। गायन का प्रभाव बिना लय, ताल के सम्भव नहीं है और अभिनय के साथ नृत्यम् ताल–लयाश्रितम् कहा गया है। नाटयशास्त्र में स्पष्ट है कि गायन, वादन, तथा नृत्य संगीत के तीन पक्ष माने गए हैं। नाट्य में गायक, वादक व नृत्य का प्रयोग नाट्य की पूर्णता है।

नाटयशास्त्र को भरत के काल के बाद विद्वानों ने नाट्यशास्त्र को आधार ग्रन्थ मानकर कई व्याख्याएँ की। कालान्तर में सभी ग्रन्थकारों ने नाटयशास्त्र के प्रत्येक अध्याय व प्रत्येक श्लोक की विस्तृत व्याख्या कर यह सिद्ध कर दिया संगीत जगत के लिए नाटयशास्त्र एक वेद है। इसी वेद से शास्त्रीय संगीत की अविरल धारा, अब तक हज़ारों वर्ष से प्रवाहित हो रही है। नाट्यशास्त्र एक सम्पूर्ण, प्रामाणिक ग्रन्थ है। हमारे चार वेदों के बाद यह पॉचवा वेद संगीत की सम्पूर्णता को समाहित किए हुए है, इसलिए विश्व में भारतीय शास्त्रीय संगीत सर्वोच्च शिखर पर है जो यह निश्चित करता है कि भारतीय सभ्यता का यह वाङ्मय कितना विकसित और प्राचीनतम् है।

3.5 गान्धर्व का स्वरुप

नाटयशास्त्र में 28 वें अध्याय के 8वें श्लोक में वर्णित है – 'गान्धर्वमिति तज्ज्ञेयं स्वरताल पदाश्रयम्'। भरत ने नाट्यशास्त्र में निर्देशित किया है कि कंठ संगीत तथा वाद्य संगीत का विधिवत संयोग ही गान्धर्व है। गान्धर्व पद का मूल अर्थ है शास्त्रीय संगीत जो परम्परागत व प्राचीन हो वही मार्ग संगीत है। गान्धर्व की व्याख्या में अन्य विद्वानों ने भी अपने विचार व्यक्त किये हैं।

नाट्यशास्त्र में गान्धर्व के तीन भेद बताए गये है :–

1. स्वर 2. ताल 3. पद (गीत)

उक्त तीन अंगों के प्रयोग को नाट्यशास्त्र में विस्तार से समझाया गया है। इसमें बताया गया है कि नाट्य के संदर्भ में गान्धर्व के तीनों अंगों का प्रयोग किस प्रकार से किया जाय। नाट्य को आकर्षक व प्रभावी बनाने के लिए श्रुति, स्वर, ग्राम आदि के सम्बन्ध में विचार किया गया है।

गान्धर्व शब्द का मूल अर्थ है वह शास्त्रीय संगीत जो परम्परागत एवं प्राचीन हो अर्थात् मार्ग संगीत। अर्थात गान्धर्व का ही पर्याय 'मार्ग' संगीत है जो परम्परा से प्राचीन है तथा स्वर, ताल तथा 'पद' गीत से युक्त हो। पद का तात्पर्य यहॉ शब्द से है। ताल के नियमबद्ध होकर स्वर रचना कंठ व आतोद्य के साथ जो गायन हो, वही गान्धर्व या मार्ग संगीत है।

3.6 स्वर, ग्राम—मूर्च्छना व श्रुति

1. स्वर — नाटयशास्त्र के 28वें अध्याय के श्लोक में—:

षड्जश्च ऋषभश्चव गान्धरो मध्यमरतथा।

पञ्चमो धैवतश्चैब निषादः सप्त च स्वराः।।

अर्थात् ये सात स्वर हैं जिनके नाम भिन्न हैंः—

1. षड्ज 2. ऋषभ 3. गान्धार 4. मध्यम 5. पंचम 6. धैवत 7. निषाद

वैसे स्वर के संबंध में उनका कोई भिन्न दृष्टिकोण नहीं है। गान्धर्व की चर्चा करते समय उन्होंने स्वर को सर्वोपरि माना है :—

गान्धर्व त्रिविध विधात् स्वरतालपदात्मकम्।

स्वर प्रयोग परम्परा से भिन्न होने पर उनके क्रम में, उनकी संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए, इस बात का समर्थन भी भरत ने परोक्ष रुप में किया है। भरत के सप्तक में नौ स्वर हैं। उन्होंने अन्तर गन्धार और काकली निषाद का भी समावेश किया है।

स्वर की परिभाषा — जो श्रुति के अनन्तर उत्पन्न होने वाला, स्निग्ध (कर्ण प्रिय—मधुर) गुंजन करने वाला तथा श्रोताओं के मन—रंजन करने वाला हो, वह स्वर है। कुछ विद्वानों ने सात स्वरों की निम्न पशु—पक्षियों का उच्चारण जनित माना है।

सा	—	मोर
रे	—	चातक
ग	—	बकरा
म	—	क्रोश्च पक्षी
प	—	कोकिल
ध	—	मेंढक
नि	—	हाथी

अर्थात, ये स्वर इन प्राणियों के उच्चारित स्वरों से अधिक समानता रखते हैं।

वादी स्वर — वादी स्वर वह है जो राग के अन्य स्वरों में प्रमुख व महत्वपूर्ण रहता है। यह स्वर अधिक बार प्रयुक्त होता है तथा अभिव्यक्ति के लिए आवृत्त किया जाता है, गीत के आदि और अन्त में प्रयोग किया जाता है। यह राग के स्वर समुदाय में राजा की तरह होता है।

<u>संवादी स्वर</u> — यह प्रधान स्वर का मुख्य सहायक होता है। इसका स्थान मंत्री जैसा होता है। यह गीत सृजन में सहायक होता है। इसका प्रयोग वादी स्वर की अपेक्षा गौण होता है तथा अन्य स्वर इसका अनुगमन करते हैं।

<u>विवादी स्वर</u> — शब्द से स्पष्ट है कि विवाद उत्पन्न करने वाला। किसी राग के स्वरों में बाधा उत्पन्न करने वाला स्वर विवादी कहलाता है। ऐसा स्वर वर्ज्य की स्थिति वाला होता है। कई विद्वान इसके स्वल्प प्रयोग का विचार रखते हैं लेकिन इस स्वल्प प्रयोग में भी रंजकता का भाव उत्पन्न होना अनिवार्य है। अतः इस स्वर का प्रयोग कुशल कलाकार रंजकता की वृद्धि के लिए ही कर सकता है, ताकि राग के क्रम—नियम में विवाद न हो।

<u>अनुवादी स्वर</u> — वादी, संवादी तथा विवादी के अतिरिक्त कुछ स्वर अनुवादी होते हैं। जो स्वर वादी तथा संवादी के साथ सहयोग कर रंजकता की वृद्धि करता है, अनुवादी कहलाता है। अनुगामी यानि मुख्य स्वर वादी व संवादी के पीछे—पीछे अनुगमन करने वाले स्वर अनुवादी कहलाते हैं।

<u>2. ग्राम—मूर्च्छना</u> — नाटयशास्त्र में सात स्वरों के समूह को लेकर दो ग्राम बताए हैं। अर्थात स्वरों का समूह या संयोग ग्राम कहलाता है। विद्वानों द्वारा ग्राम की संशोधित परिभाषा दी गई है —वह स्वर समूह जो मूर्च्छना, तान, अलंकार तथा जाति आदि का आश्रय लेता है, 'ग्राम' कहलाता है। नाटयशास्त्र में जो दो ग्राम बताए हैं वे षडज ग्राम व मध्यम ग्राम हैं। शुद्ध स्वरों का आश्रय लेने वाला 'षड्ज ग्राम' तथा विकृत स्वरों के आश्रय लेने वाला 'मध्यम ग्राम'।

नाटयशास्त्र में 24 वें श्लोक में ग्रामों का उल्लेख मिलता हैः—

अथ द्वौ ग्रामो षड्जो मध्यमश्रुति।
अत्राश्रिताः द्वाविंशतिः श्रुतयः।।

अर्थात् दो ग्राम हैं—षड्ज ग्राम और मध्यम ग्राम, इसी में बाइस श्रुतियॉ हैं। दोनों ग्रामों की 7—7 मूर्च्छना होती हैं, जिनसे रागों की अवधारण की जाती है। इन्हें जातियॉ कहा गया है।

षड्ज ग्राम की सात मूर्च्छना के नाम निम्न हैः—

1. उत्तर मन्द्रा — सा रे ग म प ध नि
2. रजनी — ऩिसा रे ग म प ध
3. उत्तरायता — ध़ ऩि सा रे ग म प
4. शुद्ध षड्जा — प़ ध़ ऩिसा रे ग म
5. मत्सरीकृता — म़ प़ ध़ ऩि सा रे ग
6. अश्वक्रान्ता — ग़ म़ प़ ध़ ऩि सा रे
7. अभिरूद्गता — ऱे ग़ म़ प़ ध़ ऩि सा़

इसी प्रकार मध्यम ग्राम की 7 मूर्च्छनाएं स्वर क्रम में निम्न प्रकार से हैं :—

1. सौवीरी — म प ध नि सा रे ग
2. हारिणाश्वा — प ध नि सां रे ग म
3. कलोपनता — ध नि सा रे ग म प
4. शुद्ध मध्या — नि सा रे ग म प ध
5. मार्गी — सा रे ग म प ध नि
6. पौरवी — रे ग म प ध नि सा
7. हृष्यका — ग म प ध नि सा रे

जातियों की कुल संख्या अठारह मानी गई है। जिन्हें शुद्धा तथा विकृता कहा जाता है।

3. श्रुति – श्रुति भारतीय सप्तक का मूलाधार है। प्राचीन काल से ही भारतीय स्वरों की स्थापना श्रुतियों के आधार पर करने का सिद्धान्त संगीत विद्वानों द्वारा मान्य चला आ रहा है। श्रुति भारतीय संगीत की आत्मा है। आत्मा के तत्व को जानने वाला मानव परमानन्द को प्राप्त कर लेता है। सभी प्रकार की चिंताओं और दुःखों से मोक्ष प्राप्त करता है। इस प्रकार श्रुति की साधना से संगीतज्ञ सांसारिक चिंताओं से विमुक्त होकर सच्चिदानन्द भगवान के दर्शन करता है। जैसे

अतो गीत प्रपच्चस्य श्रुत्यादेस्त स्वदर्शनात्।
अपि स्यात्सच्चिदानन्दरूपिणः परमात्मनः।।
प्राप्ति प्रवृत्तस्य मणिलाभो यथा भवेत।

अर्थात् वीणा वादन के तत्व को जानने वाला, श्रुतियों की जाति आदि को पहचानने वाला, कुशल और ताल का ज्ञाता मानव बिना प्रयत्न के ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। वीणा—वादन का तत्व आत्मा की शान्ति एवं रंजकता प्रदान करता है। रंजकता श्रुतियों की जाति आदि के ज्ञान से प्राप्त होती है। किसी श्रुति का प्रयोग किस स्वर पर भावोत्पत्ति के हेतु करना है? और ताल अर्थात् मर्यादा के नियमों का पालन किस प्रकार करना है? मानव को जब यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो वह इसका यथा समय प्रयोग कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। आप जान गये होंगे कि भारतीय संगीत का भौतिक, दैविक तथा आध्यात्मिक धरातल पर चिंतन हुआ। श्रुति तत्व भी उनमें से एक है।

श्रुति को भरत ने ध्वनि मूल्य माना है जो सुनाई देती है पर स्वराश्रित होती है। नाटयशास्त्र में श्रुतियों का विवेचन विस्तार पूर्वक किया है।

श्रुति की परिभाषा – श्रुति किसे कहते हैं? हम यहाँ इस बात की चर्चा करेंगे। संगीतोपयोगी नाद या ध्वनि, जो कान से सुनाई दे, जो रंजक हो तथा कान, मन और आत्मा को सुख प्रदान करे, आनन्द दे, वही श्रुति है। इसके अतिरिक्त अरंजक ध्वनि श्रुति संज्ञा को प्राप्त नहीं कर सकती। संगीत, विद्वानों द्वारा स्वरों के सूक्ष्मांतरों के निर्देशन का साधन है। इसलिए समय—समय पर इस पर विचार हुआ है।

श्रुति की परिभाषा हम इस प्रकार भी कर सकते हैं—*" वह संगीतोपयोगी ध्वनि जो कानों को साफ—साफ सुनाई पड़े तथा जो एक—दूसरे से स्पष्ट तथा अलग पहचानने में आ सके, उसे श्रुति कहते हैं। "*

श्रुति शब्द वेद के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। वेद क्योंकि श्रुत परम्परा के पढ़े जाते थे इसीलिए वेदों को श्रुति कहा जाता है। वेद मन्त्रों का सस्वर उच्चारण होता था। स्वरों के उच्चारण प्रकार को श्रुति कहा जाने लगा। लेकिन संगीतोपयोगी श्रुति जो भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त होती है, उसका वर्णन हमें नाट्यशास्त्र से मिलना प्रारम्भ होता है। भरत ने श्रुति की स्पष्ट रूप से परिभाषा नहीं की है। उन्होंने नाट्यशास्त्र में केवल इतना ही कहा है कि *'तत्र व द्वाविंशति श्रुतयः'* अर्थात् श्रुतियां बाईस हैं। श्रुति और स्वर में भेद उतना ही है जितना सांप और उसकी कुण्डली में। यही भेद शास्त्र सम्मत है।

वास्तव में सुनी जाने वाली अनेक ध्वनियां ऐसी होती हैं जिनमें रन्जकता नहीं होती, आकर्षण नहीं होती और मधुरता का अभाव रहता है। ऐसी ध्वनियां संगीतोपयोगी नहीं होती। इसलिये कलाकार केवल उसी श्रुति की उपासना करता है जिसमें रंजकता हो, जो स्पष्ट रूप से सुनी, पहचानी और प्रयुक्त की जा सके, जो भावाभिव्यक्ति में समर्थ हो, जो स्वरों की शुद्ध और अशुद्ध तथा

अविकृत और विकृत अवस्था का कारण हो, जो स्वर की तारता को मापने का मापदण्ड हो। अर्थात् श्रुति ध्वनि का वह सूक्ष्मतम भाग है जिसमें ध्वनि का परिमाण लगाया जा सकता है, जो राग में प्रयुक्त होने पर स्वर और अप्रयुक्तावस्था में अपने निकटवर्ती स्वरों की सहायता करें, जो स्वर का एक अभिन्न अंक हो, जो अनुरणानात्मक एवं अनुरच्जक हो और गायन–वादन में विभिन्न गमक प्रकारों द्वारा मधुरता एवं आकर्षण का संचार करे, ऐसी ध्वनि ही सच्ची श्रुति और संगीतोपयोगी ध्वनि कही जा सकती है। यही ध्वनि वीणा वादन द्वारा प्राप्त होती है। इसी ध्वनि का प्रयोग विभिन्न रसों के संचार हेतु किया जाता है। यही ध्वनि आत्मा को शान्ति प्रदान करती है और यही ध्वनि मोक्ष मार्ग की ओर प्रेरित करती है।

श्रुति संख्या – यह तो निश्चित हो गया कि संगीतोपयोगी ध्वनि को श्रुति कहते हैं। अब यहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि श्रुतियों की संख्या कितनी है। वस्तुतः नाद के एक स्थान में असंख्य नाद विचरते हैं। उनमें से जो सुनी जा सके वह श्रुतियां कही जाती हैं और श्रुतियां जब प्रयोग में लायी जाती हैं तो स्वर का रूप धारण कर लेती हैं। अस्पष्ट एवं सुनाई न देने वाले नाद सहायक नादों का रूप धारण कर निकटवर्ती स्वर की सहायता करते हैं। उसमें रंजकता का उत्पादन करते हैं। स्वर का रूप धारण करने वाली श्रुति को स्वर श्रुति और शेष श्रुतियों को नाद श्रुति कहते हैं। सुनी जाने वाली श्रुति के 22 भेद हैं। हृदय स्थान में 22 नाड़ियां हैं उन सभी के नाद स्पष्ट सुने जाते हैं। इसलिये उन्हीं को श्रुतियां कहते हैं। श्रुतियां संख्या में 22 हैं। भरत, मतंग, नारद, शारंगदेव, लोचण, सोमनाथ तथा आधुनिक सभी विद्वानों ने नाद के एक स्थान से 22 श्रुतियों का होना ही माना है।

श्रुति नामकरण – जैसा कि हमने ऊपर बताया है कि नाद के एक स्थान में 22 श्रुतियां हैं और ये श्रुतियां एक दूसरे से क्रमिक ऊँची ध्वनि उत्पादन करने का कारण हैं। चूंकि ये श्रुतियां एक दूसरे से क्रमिक ऊँचे स्थान को प्राप्त कर नाना भावों को व्यक्त करती है, इसीलिये विद्वानों ने इन श्रुतियों के लिये अलग–अलग नाम रखे। जो इस प्रकार हैं :–

श्रुति संख्या	नाम	श्रुति संख्या	श्रुति नाम
1	तीव्रा	14	क्षिति
2	कुमुद्वति	15	रक्ता
3	मन्दा	16	सन्दीपनी
4	छन्दोवती	17	आलापिनी
5	दयावती	18	मदन्ती
6	रंजनी	19	रोहिणी
7	रक्तिका	20	रम्या
8	रौद्री	21	उग्रा
9	क्रोधा	22	क्षोभिणी
10	वज्रिका		
11	प्रसारिणी		
12	प्रीति		
13	मार्जनी		

भरतादि सभी आचार्यो ने इन्हीं नामों का उल्लेख किया है। दत्तिल ने तथा नारद के कुछ अलग नाम बताये हैं फिर भी सर्वमान्य 22 नाम वही हैं जिनका हमने तालिका में संकेत किया है।

<u>श्रुति जाति</u> – विभिन्न प्रकार की भावनाओं से ओतप्रोत ये 22 श्रुतियां अपनी प्रकृति के अनुसार तीन अथवा चार प्रकारों में बंट जाती है। प्राचीन आचार्यों ने उच्च एवं रूक्ष ध्वनि को वातज, गम्भीर और धनशील ध्वनि को पित्तज, स्निग्ध और सुकुमार ध्वनि को कफज तथा तीनों प्रकारों के मेल को सन्निपातज कहा है।

<u>श्रुति और स्वर</u> – नाद श्रवणावस्था में श्रुति और व्यक्तावस्था में स्वर कहा जाता है। भारतीय संगीत में यह विशेषता प्राचीन काल से ही पायी जा रही है कि यहां नाद के एक ही स्थान में 22 नादों का प्रयोग होता चला आ रहा है। जो नाद प्रयुक्त नहीं हुआ वह श्रुति और जो प्रयुक्त हो गया वह स्वर नाम से पुकारा गया। इस तथ्य से प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल के सभी विद्वान एवं कलाकार सहमत हैं।

<u>श्रुतियों पर स्वर स्थापना</u> – श्रुतियों को मुख्य सात स्वरों में बांटा गया है। इस विभाजन के लिये 'चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमा। द्वै द्वै निषादगांधारौ तिस्त्री ऋषमधैवतौ'। अर्थात् षड्ज, मध्यम और पंचम स्वरों के लिये चार–चार, ऋषभ और धैवत स्वर के लिये तीन–तीन तथा गांधार और निषाद के लिये दो–दो श्रुतियां निश्चित करने का सिद्धान्त प्राचीन काल से ही चला आ रहा है जो सभी युगों के विद्वानों एवं कलाकारों को मान्य है।

अभ्यास प्रश्न

क) अति लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. भरत के नाटयशास्त्र में किन विषयों का उल्लेख है?
2. नाटयशास्त्र किस–किस अध्याय में संगीत सम्बन्धी जानकारी है?
3. भरत के नाटयशास्त्र में कितने स्वरों का विवरण है?
4. दो ग्रामों से कितनी श्रुतियॉ मानी गई हैं?

ख) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. आतोद्य से क्या अभिप्रयाय है? विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. भरत के नाटयशास्त्र को पंचम वेद क्यों कहा गया है?

3.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप भरत के नाटयशास्त्र में वर्णित तथ्यों को जान चुके होंगे। नाटयशास्त्र प्रथम ग्रन्थ है, जिसमें संगीत का विस्तृत वर्णन है। भारतीय संगीत की उत्पत्ति, विकास विभिन्न पक्षों के नियमों का उल्लेख नाटय–शास्त्र में निहित है। स्वर, ताल, जाति, श्रुति, ग्राम आदि का मौलिक विवेचन भरत ने किया है। रागों के वादी, संवादी, अनुवादी स्वरों को समझने के लिए नाटयशास्त्र में पूर्ण अध्ययन की सामग्री उपलब्ध है। भरत का नाटयशास्त्र प्राचीन, अनुकरणीय, स्मरणीय व अध्ययनीय शास्त्र है जिसमें भारतीय संगीत का विस्तृत व अमूल्य भंडार है। भरत ने संगीत विषय में शोध का मार्ग प्रशस्त किया है। नाटयशास्त्र के बाद कई विद्वानों ने स्वर, श्रुति व श्रुति–अन्तर से सम्बन्धित अनेक विचार प्रकट किये हैं। यह भरत के नाटयशास्त्र की ही देन है कि आज भारतीय शास्त्रीय संगीत व क्रियात्मक के साथ–साथ वैज्ञानिक शास्त्र सम्भव है। अतः शास्त्रीय संगीत का शास्त्र–पक्ष आज भरत की ही देन है। यही मुख्य कारण है कि पूरे विश्व को भारतीय संगीत का आकर्षण अध्ययन व शोध के लिए जिज्ञासा उत्पन्न कर रहा है।

3.8 शब्दावली

1. समकालीय – एक ही समय के लोग
2. पुरातत्व – प्राचीन तथ्य जो प्राप्त है।
3. स्निग्ध – कोमल, संगीत के लिए कर्णप्रिय, मधुर
4. अनुगामी – पीछे–पीछे चलने वाला
5. रंजक – मन में आनन्द उत्पन्न करने वाला
6. स्मरणीय – स्मरण करने वाला

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) अति लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. नाटकतथा संगीत
2. 28 से 33 वें अध्याय
3. 7 स्वरों सा, रे, ग, म, प, ध, नि
4. बाइस

3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शास्त्री, श्री बाबूलाल शुक्ल (सम्पादक एवं व्याख्याकार), भरत(मूल ग्रन्थकार),*नाट्यशास्त्र,* चौखम्भा पब्लिकेशन, वाराणसी।

2. बृहस्पति, श्री कैलाश चन्द्रदेव, *भरत का संगीत सिद्धान्त,* उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान।

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वसन्त, *संगीत विशारद,* संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. चौधरी, डा0 सुभाष रानी, *संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त,* कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भरत के नाट्यशास्त्र के आधार पर संगीत की व्याख्या कीजिए।

इकाई 4 – प्राचीन काल

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 प्राचीन काल
4.3.1 वैदिक काल
4.3.2 संदिग्ध काल
4.3.3 भरत काल
4.4 सारांश
4.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रदर्शन कला—संगीत में स्नातकोत्तर, (एम0पी0ए0एम0—501) पाठ्यक्रम की चौथी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप सौन्दर्यशास्त्र, रस व छन्द से परिचित हो चुके होंगे। आप यह भी जान चुके होंगे कि इनका भारतीय संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रस्तुत इकाई में भारतीय संगीत के इतिहास के अन्तर्गत प्राचीन काल का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत है। प्राचीन काल के विभिन्न समय कालों में संगीत की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। संगीत विद्वानों द्वारा रचित इस काल के ग्रन्थों का उल्लेख भी इस इकाई में किया गया है, जो आपके संगीत ज्ञान की वृद्धि में उत्प्रेरक का कार्य करेगा।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ चुके होंगे कि प्राचीन काल में भारतीय संगीत की स्थिति क्या थी और विद्वानों द्वारा संगीत के प्रचार—प्रसार के लिए क्या—क्या प्रयास किए गए। आप प्राचीन काल के संगीत विद्वानों व उनके द्वारा रचित ग्रन्थों के बारे में भी जान चुके होंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझ सकेंगे :—

- भारतीय संगीत के विषय में।
- भारतीय संगीत के ऐतिहासिक विकास क्रम को।
- वैदिक कालीन संगीत के विषय में।
- संदिग्ध काल में संगीत के विकास क्रम को।
- भारतीय संगीत के आधारभूत ग्रन्थ भरतकृत नाट्यशास्त्र के विषय में।
- वैदिक कालीन संगीत ग्रन्थों के विषय में।

4.3 प्राचीन काल

<u>भारतीय संगीत का इतिहास</u> – भारतीय संगीत का इतिहास अत्यधिक प्राचीन है। प्राचीन भारतीय प्रबुद्ध ऋषियों, मुनियों एवं दृष्टाओं ने सृष्टि की उत्पत्ति नादब्रहम से मानी है। ब्रह्माण्ड के प्रत्येक कणांश में, जड़–चेतन वस्तु में नाद व्याप्त है। अतैव नाद को नादब्रहम की संज्ञा से अभिहित किया गया है। नादब्रह्म ओंकार–वाचक है। वैज्ञानिकों के मतानुसार नादरहित सृष्टि अकल्पनीय है। प्रकृति के प्रत्येक कण में, प्रत्येक तत्व में एवं प्रत्येक वस्तु में संगीत की अक्षुण्ण और अखण्ड धारा सदियों से वर्तमान तक प्रतिलक्षित, समाहित एवं प्रवाहित हो रही है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही अदृश्यतः संगीतमय है।

पुराविदों के अनुसार संगीतकला का प्रादुर्भाव स्वयंभू परमेश्वर द्वारा हुआ है। भारतीय परम्परा के अनुसार नटराज शिव नृत्य कला के आदि स्रोत हैं तथा मॉ सरस्वती गीत एवं वाद्य की प्रवर्तिका हैं। सभ्यता के प्रत्येक चरण में संगीत की यह स्वर लहरी किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। सृष्टि–सृजन के साथ ही संगीतकला का सूर्य उदित हो चुका था। अतः संगीत का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव मनोभावों का है। मनुष्य के अथक प्रयत्नों के परिणामस्वरूप संगीतकला विभिन्न युगों में उत्तरोत्तर विकसित होती गई। यदि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखा जाये तो संगीत के विकास क्रम में, हडप्पा संस्कृति की प्रतीकातमकता वैदिक काल की पवित्रता, रामायण और महाभारत काल की सात्विकता, मुगलों की रागप्रियता, सन्तों की भक्ति–परायणता, राजदरबारों की भव्यता का प्रभाव हमें स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य पूर्णरूपेण प्रकृतिस्थ प्राणी था। मानव–मुख से निःसृत स्वाभाविक ध्वनियां ही उसका संगीत थी। संगीत उत्पत्ति के विषय में देवी–देवताओं से सम्बंधित अनेक किवदन्तियॉ उपलब्ध होती है। उपलब्ध प्रमाणों से इस बात की पुष्टी होती है कि ई0 पूर्व 5000 सिंधु सभ्यता में लिंगादि आकृतियां, नृत्यरत नट्राज शिव एवम् देवप्रतिमायें प्राप्त हुई हैं।

पूर्वपाषाण काल में आधुनिक मंजीरा वाद्य के समान पत्थर से निर्मित अग्सा नामक वा्द्य बनाया गया था। विद्वानों के अनुसार ''पूर्व पाषाण काल के लोग भारत के मूल निवासी थे। इस काल में संगीत वाद्य का जन्म हो चुका था। पत्थर का एक संगीत् वाद्य इस युग में पाया जाता है, जिसे 'अग्सा' कहते हैं। कुछ विद्वान् इसको शिकार का शस्त्र मानते हैं, लेकिन वास्तव में यह पत्थर का औजार नहीं हैं, संगीत वाद्य ही है। लोग इसे बजा–बजाकर विचित्र स्वरों का आनन्द लिया करते थे। यह लोग 'हू हू हेवा, हू हू हेवा' जैसी विचित्र प्रकार की संगीतात्मक ध्वनि निकालते थे।

इसके उपरान्त उत्तर–पाषाण काल में संगीत की अवस्था पूर्वकाल की अपेक्षा काफी कुछ उन्नत हो चुकी थी। यदि इस काल की सभ्यता का विश्लेषण करें तो हम इस परिणाम पर पहुॅचते हैं कि उसकी पृष्ठभूमि में संगीत ही वह वस्तु थी जिसने उस सभ्यता को जन्म दिया। सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान लोवास्को का कथन है कि ''वर्तमान संगीत की नींव ताम्र युग के संगीत पर रखी हुई

है''। इस काल में संगीत के द्वारा रोगों की चिकित्सा भी प्रारम्भ हो चुकी थी। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि द्रविड़ो को संगीत के वैज्ञानिक रूप का भी पता था, तभी उन्होंने संगीत का चिकित्सा के क्षेत्र में प्रयोग किया। द्रविड़ो की सभ्यता और संस्कृति अत्यन्त उच्च कोटि की थी। इनका संगीत ज्ञान भी अत्यन्त उन्नत था। आर्यों ने द्रविड़ों से ही संगीत की अनुपम भेंट प्राप्त की थी। द्रविड़ों ने जीवन के अनेक क्षेत्रों में संगीत को अपनाया। उनका संगीत किसी भी सभा एवं सुसंस्कृत जाति से कम नहीं था।

ईसा से सहस्रों वर्ष पूर्व सिन्धु नदी की घाटी में एक उन्नत एवं समृद्धशाली सभ्यता प्रस्फुटित हुई। सन् 1922 में खुदाई के द्वारा प्राप्त इसके ध्वंसावशेष, हडप्पा, मोहनजोदड़ों और भारत के पश्चिमी एवं उत्तर–पश्चिमी स्थानों पर उपलब्ध हुए हैं। पुरातत्वावशेषों से यह विदित होता है कि तत्कालीन समाज में संगीत का पर्याप्त प्रचलन था। धार्मिक एवं लौकिक समारोहों में गायन, वादन एवं नृत्य के द्वारा मनोरंजन होता था।

खुदाई में प्राप्त हुई ताबीज पर नृत्य एवं वाद्य के संकेत मिलते हैं।

भारत में उपलब्ध लिंग–पूजा तथा शक्ति–पूजा के बीज इस युग में ही निहित है। हडप्पा के उत्खननों में नृत्यरत पुरूष की खंडित मूर्ति प्राप्त हुई है।

कॉसे की दो नर्तकियों की मूर्तियों मोहनजोदड़ों से प्राप्त हुई हैं।

हडप्पा में मिले एक अन्य चित्र में एक पुरूष को व्याघ्र के समक्ष ढोल बजाते हुए अंकित किया गया है। यहॉ उपलब्ध दो अन्य मुद्राओं पर दीर्घाकार ढोलकें अंकित हैं, जिनके दोनों मुख चर्म से आबद्ध हैं। एक अन्य स्थान पर ढोलक की आकृति का वाद्य मृणमयी मूर्ति की ग्रीवा से लटकता दिखाया गया है।

झांझ तथा करताल के समान वाद्य भी यहॉ उपलब्ध होते हैं, जिससे यह ज्ञात होता है कि इस काल में संगीत विकसित था एवं उसका स्तर भी उत्कृष्ट

था। जब हम लौह–युग की नारियों पर दृष्टि डालते हैं तो हमें पता चलता है कि वह द्रविड़ों की नारियों के समान ही उन्नतशील तथा संगीत मर्मज्ञा थीं। इन्होंने पुरूषों से अधिक संगीत को अपनाया।

अध्ययन की सुविधा के लिये हम भारतीय संगीत के इतिहास को मुख्यतः तीन खण्डों में विभाजित कर सकते हैं –

1.प्राचीन काल **2.मध्य काल** **3.आधुनिक काल**

अब हम सर्वप्रथम प्राचीनकाल में भारतीय संगीत के इतिहास को जानेंगे। इस काल मे संगीत के विकास को समझने के लिए हम प्राचीनकाल को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं –

प्राचीन काल

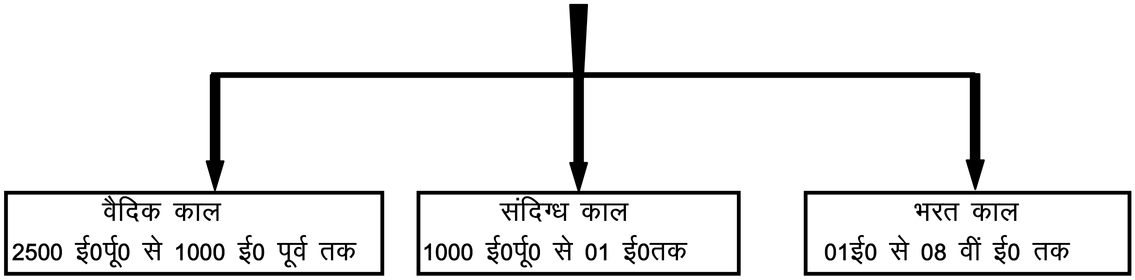

<u>4.3.1वैदिक काल (2500 ई0पू0 से 1000 ई0 पूर्व तक)</u> – वैदिक काल का आरम्भ आर्यों के आने के बाद हुआ। इतिहासकार वैदिक काल को 2500 ईसा पूर्व से 1000 ईसा पूर्व तक मानते हैं। वैदिक काल भारतीय इतिहास में प्राचीनतम् काल माना जा सकता है। वैदिक काल में ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और यजुर्वेद की रचना हुई। आधुनिक भारतीय संगीत का प्रादुर्भाव वैदिक कालीन सामगान से माना गया है। वेदचतुष्टयी में सामवेद का संगीत की दृष्टि से एक विशिष्ट स्थान है। सामवेद में भारतीय संगीत–सरित् के अनादि स्रोत का दृश्यस्वरूप हमारे सामने प्रथमतः अभिव्यंजित होता है।

सामवेद का संगीत में विशिष्ट स्थान है। श्रीमद्भगवद्गीता में स्वयं भगवान कृष्ण ने स्वयं को 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' कहकर सामवेद की महत्वता को सुस्पष्ट कर दिया है। 'साम' शब्द का मूलार्थ गान अर्थात् गेय वस्तु रहा है। विशिष्ट स्वर–सन्निवेश ही साम शब्द का मूलार्थ है। सामगान में वाणी की सुस्पष्टता का और उसको विविध प्रकार से गाने का विधान था। सामगान का प्रारम्भ एवं समापन दोनों ही 'ऊँ' स्वर द्वारा सम्पन्न होते थे। सामवेद पूर्णतया संगीतमय वेद है। सामवेद में मंत्रों का पाठ संगीतमय होता रहा है। आज भी हमें इसका कुछ अंश सुनने को मिल जाता है।

'सामगायन' में केवल तीन स्वर प्रयुक्त किये जाते थे –

1.स्वरित **2.उदात्त** **3.अनुदात्त**

उदात्त का अर्थ ऊँचा और अनुदात्त का अर्थ नीचा स्वर है किन्तु 'स्वरित' के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानजन 'स्वरित' को उदात्त से ऊँचा और कुछ अनुदात्त से नीचे का स्वर मानते हैं। इसका अर्थ कुछ भी माना गया हो, किन्तु उस समय में स्वरों की संख्या तीन है ऐसा समस्त विद्वानों द्वारा एकमत से स्वीकार किया गया है। **प्रचय** एवं **निघात** तक यह स्वर संख्या

पॉच हो गए। साम गायकों ने **क्रुष्ट** तथा **अति स्वार्य** को भी सम्मिलित करके सात स्वरों की संख्या पूर्ण की। ऋक्प्रतिसाख्य ग्रन्थ में सर्वप्रथम चार स्वरों का वर्णन प्राप्त होता है। इसके बाद स्वरों की संख्या चार से पॉच और अंत में सात हुई।

कुछ विद्वानों के मतानुसार मूल स्वर 'उदात्त', 'अनुदात्त' एवं स्वरित ही हैं जिनसे अन्य स्वरों का विकास हुआ। पाणिनी ने भी उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित इन तीन मूल स्वरों के द्वारा ही अन्य स्वरों के विकास के तत्व को स्वीकारते हुये अपने ग्रंथ ''सिद्धान्त कौमुदी'' में लिखा है कि ''निषाद और गान्धार –उदात्त, ऋषभ एवं धैवत –अनुदात्त तथा षड्ज, मध्यम एवं पंचम स्वरित स्वरों के सदृश्य हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वैदिक काल मे 1000 ईसा पूर्व तक में ही 'सा रे ग म प ध नि' सात स्वर प्रचलन में आ गये थे। इसमें से प्रत्येक स्वर अपने से पूर्व वाले स्वर से क्रमशः उच्च कहा गया है। नारद मुनि ने अपने ग्रन्थ ''भारत भाष्य'' में स्वरों की उच्चता–नीचता को स्पष्ट किया है –

''उच्चैर्निषाद् गांधारोनीचावृषभ धैवतो।
स्वरित प्रभवाहयते षड्ज मध्यम पंचमाः।।''

वैदिक काल में ग्रामों की भी उत्पत्ति हो चुकी थी। स्वरों के व्यवस्थित क्रम को **ग्राम** कहते हैं। जिस प्रकार विभिन्न परिवार एक गॉव में निवास करते हैं और उनमें व्यक्तिगत कुछ विभिन्नता भले ही हो किन्तु समान परम्पराओं–विश्वास आदि के कारण उनमें एकता–भाव विद्यमान रहता है, उसी प्रकार (सात) स्वर परस्पर सम्बन्ध में एकत्र स्थापित किये जाते हैं तब संगीत में 'ग्राम' का निर्माण होता है। ग्राम तीन हैं **–षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम और गांधार ग्राम।**

उपर्युक्त तीनों ग्रामों में से दो ग्रामों षड्ज एवं मध्यम ग्रामों का ही प्रचार रहा। षड्ज ग्राम की सात एवं मध्यम ग्राम की 'ग्यारह' जातियां अर्थात् कुल 'अट्ठारह' जातियॉ मानी गयी हैं। विकृत स्वरों के अभाव को दूर करने हेतु 'मूर्च्छना' की व्यवस्था की गयी थी।

एक स्वर से आरम्भ करके क्रमशः सातवें स्वर तक आरोह करने के पश्चात् उसी मार्ग से अवरोह करने को **मूर्च्छना** कहते हैं। एक ग्राम के किसी भी स्वर को आधार मानकर क्रमशः सात स्वर नीचे उतरने से एक 'मूर्च्छना' बन जाती है। इस प्रकार एक ग्राम में सात मूर्च्छनायें हो सकती हैं। इस प्रकार षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम एवं गान्धार ग्राम की कुल मिलाकर 21 मूर्च्छनायें हैं।

इस काल में जाति–गायन प्रचलित था। दस लक्षणों से युक्त विशिष्ट स्वर सन्निवेश 'जाति' कहलाता है। जैसे थाट से राग उत्पन्न होता है, उसी प्रकार मूर्च्छना से 'जाति' उत्पन्न होती है। जाति गायन के दस लक्षण माने गये हैं – ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, षाड्व, औडव, अल्पत्व, बहुत्व, मन्द्र और तार।

इस काल के ग्रन्थों में यत्र–तत्र अनेक वाद्यों का भी उल्लेख प्राप्त होता है, जैसे अवनद्ध वा्द्यों में दुन्दुभि, भुदुन्दुभि, वानस्पति, आघाति, तन्त्र वाद्यों मेंकर्करी वीणा, वारण्य वीणा, सुषिर वाद्यों में तृषव, नाद बाकुर आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वैदिक काल में ही संगीत का अधिक प्रचार हो चुका था।

<u>4.3.2 संदिग्ध काल (1000 ई0पू0 से 01 ई0 तक)</u> – संदिग्ध काल की अवधि 1000 ईसा पूर्व से 01 ई0 तक है। संगीत के इतिहास की दृष्टि से इसे संदिग्ध काल इसलिये कहा गया कि इस समय का कोई भी ऐसा ग्रन्थ नहीं है जिससे उस समय के संगीत की सटीक जानकारी मिल सके। कुछ उपनिषद् मिलते हैं, जिनमें संगीत के विषय में कुछ सामग्री प्राप्त होती है।

इस काल में लिखित रामायण एवं महाभारत जैसे महाकाव्यों में संगीत सम्बन्धी चर्चा हुई है। इस काल में संगीत के प्रयोगात्मक पक्ष का विकास हुआ तथा रसादि नृत्य की नवीन शैलियों का सृजन हुआ। इसी काल में लोकगीतों एवं लोकनृत्यों का प्रचार–प्रसार भी बढ़ा। पर्वोत्सवों एवं मेलों आदि में गायन, वादन एवं नृत्य का सामूहिक रूप से आनन्द लिया जाता था। 'छन्दोग्योपनिषद्' और 'वृहदारण्यक' में गीत, वाद्य एवं नृत्य इन तीनों का ही उल्लेख हुआ है। 'ऋक प्रतिसाख्य' एवं शिक्षा ग्रन्थों में भी संगीत सम्बन्धी विवरण प्राप्त होता है। 'ऋक प्रतिसाख्य' में सर्वप्रथम संगीत शास्त्र का नियमित रूप मिलता है।

- <u>रामायण काल</u> – वाल्मीकी कृत रामायण महाकाव्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इस काल में संगीत समुन्नत दशा में था। 'राजा दशरथ के पुत्रों के जन्मोत्सव, विवाह तथा भगवान श्रीराम के वनवास के पश्चात् पुनः अयोध्या आगमन जैसे मांगलिक अवसरों पर संगीतकी मधुर स्वरावलियों की एवं नृत्य घुंघरूओं की झंकार सुनायी देती है।

इस काल में भारतीय वृन्द–गान की परम्परा विकसित थी और यह पटह, मृदंग, डिमडिम, पणव, मिरज, आडम्बर और चोलिका जैसे अवनद्ध वाद्यों द्वारा किया जाता था। अयोध्या, लंका, किष्किन्धा सभी नगरों में सांगीतिक ध्वनियॉं एवं वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त युद्ध भूमि में शंख, सूर्य भेरी, दुन्दुभि, तुरही आदि वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। धार्मिक कृत्यों में संगीत अभिन्न अंग माना जाता था। रावण और हनुमान दोनों ही प्रसिद्ध संगीताचार्य माने गये हैं। श्रीराम के पुत्रों लव और कुश के वीणा के साथ रामायण गाने का उल्लेख प्राप्त होता है। रावण की रानियां सभी प्रकार के वाद्ययंत्र बजाने में पारंगत थी। रावण के द्वारा 'गज' से बजाये जाने वाले वाद्य 'रावनास्त्र' का भी आविष्कार इसी समय हुआ। आधुनिक 'वायलिन' वाद्य इसी 'रावनास्त्र' का परिष्कृत रूप है। वैदिक काल से ही यज्ञादि के अवसर पर नृत्य का प्रयोग होता रहा परन्तु 'घुंघरू' का प्रयोग सर्वप्रथम रामायण में ही प्राप्त होता है।

- <u>महाभारत कालीन संगीत</u> – महाभारत काल में संगीत उत्तमता के चरमोत्कर्ष पर पहॅुच चुका था। भगवान श्रीकृष्ण गायन, वादन एवं नृत्य तीनों में ही पारंगत थे। श्रीकृष्ण जैसा वंशी वादक आज तक विश्व में दूसरा नहीं हुआ, उनकी वंशी ने समाज को संगीतमय बना दिया। इस काल में संगीत के कलापक्ष के साथ–साथ उसके शास्त्र पक्ष का भी विकास हुआ। इस काल में संगीत के लिये गन्धर्व शब्द का प्रयोग मिलता है। संगीत को जीवन का आवश्यक अंग माना जाता था। भगवान श्रीकृष्ण वंशीवादन के साथ ही नृत्यकला में भी अत्यन्त प्रवीण थे, उनके 'रास' अविस्मरणीय है। अर्जुन द्वारा अज्ञातवास के मध्य 'बृहन्नला' का वेश धारण कर विराटपुत्री उत्तरा को नृत्य व संगीत की शिक्षा देने के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं।

वीणा तथा बल्लरी के अतिरिक्त वेणु, मृदंग, पणव, पटह, मुरज, भेरी, पुष्कर, शंख इत्यादि वाद्यों का प्रचलन था। गायन, वादन एवं नृत्य के साथ ताल देने की प्रणाली विद्यमान थी। गायक, वादक, नर्तक आदि को राज्य की ओर से पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त था।

- <u>पाणिनी कालीन संगीत</u> – पाणिनी के समय के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। इस समय संगीत अपने उत्कर्ष पर था। ललित कलाओं के लिये शिल्प और गीत के लिये 'गीति' अथवा 'गेय' शब्द का उल्लेख मिलता है। वृन्द वादन के लिये 'तूर्य' एवं वीणा के नाद के लिये 'क्वण' और 'निक्वण' अथवा 'निक्वाण' इत्यादि संज्ञायें प्राप्त होती हैं।

वाद्यों के कुशल कलाकारों के लिये 'झार्झारिक', 'माउडुकिक' आदि संज्ञायें दी, दर्दुर वादक के लिये 'दादर्रिक', गायन के कुशल पुरूषों के लिये 'गायन', गायिकाओं के लिये 'गायनी', गाथा गाने वालों को 'गाथक', हाथ से ताल देने वालों को 'पाणिध' अथवा 'ताड़ध', नृत्य में कुशल व्यक्ति

को नर्तक' की संज्ञा दी गयी है। इस समय में नाट्य एवं संगीत को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था तथा इस समय प्रेक्षागृहों का भी उल्लेख मिलता है।

- **जैन एवं बौद्ध**काल में भी संगीत जनसामान्य के जीवन का एक विभिन्न अंग बन गया था। भगवान् बुद्ध के सिद्धान्तों को गीतबद्ध करके उन्हें जनसामान्य में प्रचारित एवं प्रसारित किया गया। बौद्धकालीन जातक–कथाओं में भारतीय संगीत के तत्कालीन नृत्य, गीत एवं वाद्यों के प्रसंगानुकूल उल्लेख प्राप्त होते हैं।

बौद्धकालीन संगीत में जीवन की व्यापकता का समावेश अधिक हो गया था। इस काल में वही संगीतज्ञ सफल संगीतज्ञ समझा जाता था जो अपने संगीत द्वारा मानव को समस्त विकारों से ऊपर उठा सके। भगवान बुद्ध के सम्पूर्ण सिद्धान्तों को गीतों की लड़ियों में आबद्ध करके सुन्दर ढंग से गायन करके गॉव–गॉव और नगर–नगर की सुप्त जनता को जन–जागरण कर भव्य पथ पर लाया गया। इस काल में वीणा पर ही गायन होता था।

बैपुल्य–सूत्र में मृदंगादि विभिन्न लय वाद्यों का उल्लेख प्राप्त है। बौद्ध साहित्य में वाराणसी में एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसमें सम्बद्ध संगीत–विद्यालय भी था। इस संगीत–विद्यालय में देश के श्रेष्ठ गुणीजनों को संगीत–शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था। नालन्दा, विक्रमशिला एवं आनन्दपुरी तीन विश्वविख्यात विश्वविद्यालयों में संगीत–विभाग ''गान्धर्व विद्या'' के नाम से था।

- **मौर्यकाल** में संगीत मनोरंजन का मुख्य साधन था। भारत का प्रथम सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य संगीत प्रेमी था। इस समय संगीत जीवन का आवश्यक अंग बन गया था। स्त्रियों के लिये संगीत अभीष्ट गुण माना जाता था। सैल्यूकस की पुत्री हेलना जो स्वयं एक उत्तम संगीतकार थी, का विवाह सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य से हुआ जिससे भारतीय एवं यूनानी संगीत का आगमन भारत में प्रथम बार हुआ, परिणामतः भारतीय संगीत भी प्रथम बार यूनान पहुॅचा। चन्द्रगुप्त के पश्चात् उसके पुत्र बिन्दुसार के शासनकाल में संगीत के क्षेत्र में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। बिन्दुसार के पश्चात् सम्राट अशोक के काल में संगीत का आध्यात्मिक रूप सामने आया। सम्राट अशोक ने संगीत की श्रृंगारिकता को दूर करने का प्रयास किया। सम्राट अशोक की पत्नी 'तिष्यरक्षिता' की परिचारिका चारूमित्रा उत्तम वीणा वादिका थी।

- **शुंगकाल** में संगीत के क्षेत्र में कोई विशेष उन्नति नहीं हुई। गुजरात प्रान्त में 'गरबा' नृत्य का प्रादुर्भाव शुंगकाल में ही हुआ। कनिष्क के काल में भारतीय संगीत का अच्छा विकास हुआ। कनिष्क कालीन संगीत के काल को हम प्रगतिशील युग कह सकते हैं। सन् 78 ईसवीं में कनिष्क के सिंहासनारूढ़ होने के साथ ही शुंगकाल में भारतीय संगीत की जो गति शिथिल हो गयी थी वह कनिष्क काल में पुनः द्रुतगामी हो गयी। इस काल में सम्पूर्ण भारतवर्ष में संगीत की धारा एक समान ही थी। कनिष्क संगीत प्रेमी राजा थे तथा संगीतज्ञों का अत्यन्त सम्मान करते थे। कनिष्क के शासनकाल में राज्य की ओर से ऐसे संगीत समारोह भी होते थे जिनमें अफगानिस्तान, चीन आदि देशों के कलाकार भी भाग लेते थे। भारतवर्ष में इस प्रकार का यह प्रथम प्रयास था। इस काल में 'अश्वघोष' नामक एक महान दार्शनिक एवं संगीतज्ञ विद्वान पैदा हुआ था। अश्वघोष ने 'बुद्धचरितम्' नामक महाकाव्य लिखा जिसमें उच्चकोटि का संगीतमय कवित्व पाया जाता है। इस प्रकार कनिष्क काल में हमें भारतीय संगीत का विस्तृत रूप प्राप्त होता है।

4.3.3 भरतकाल (01 ई0 से 08 वीं ई0 तक) — संगीतकला की पुनः प्रतिस्थापना करने का श्रेय महर्षि भरत को है, जिन्होंने भारतीय संगीत के इतिहास में एक नवीन युग का प्रवर्तन किया है। भरताचार्य द्वारा संगीत पर आधारित विपुल ग्रन्थ—रचना को दृष्टिगत कर प्राचीन संगीत के इतिहास में ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से लेकर तत्पश्चात्वर्ती काल खण्ड को 'भरतकाल' के नाम से सम्बोधित किया जाये तो कोई आपत्ति नहीं होगी।

भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र की रचना की। भरत के समय के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वान पॉचवी शताब्दी, कुछ विद्वान चौथी शताब्दी का मानते हैं, कुछ तीसरी शताब्दी का तथा कुछ पॉचवीं शताब्दी को ही अधिक उचित मानते हैं।

नाट्यशास्त्र प्रमुख रूप से नाट्यकला पर आधारित ग्रन्थ था, किन्तु भरतमुनि ने गायन को नाट्य का अभिन्न अंग स्वीकार करते हुये नाट्य शास्त्र के 28वें अध्याय से लेकर 33वें अध्यायों तक संगीत विषयक चर्चा की है। नाट्यशास्त्र के इन अध्यायों में निम्नलिखित सामग्री मिलती है—

- भरत ने षड्ज एवं मध्यम ग्राम का उल्लेख किया है। गांधार ग्राम को पूर्णतया छोड़ दिया है।
- षड्ज ग्राम की सात और मध्यम ग्राम की ग्यारह जातियॉ अर्थात् कुल अट्ठारह जातियॉ मानी गयी हैं। अट्ठारह जातियों को पुनः दो भागों में विभाजित किया गया है—**शुद्ध** व **विकृत**।
- शुद्ध जातियॉ सात हैं और ग्यारह विकृत जातियां हैं।
- जाति के दस लक्षण माने गये हैं —
  ग्रह, अंश, तार, मंद्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाडत्व और औडवत्व।
- दो विकृत स्वर माने गये हैं—
  1. अन्तर गन्धार 2. काकली निषाद
- वादी, सम्वादी, अनुवादी और विवादी का वर्णन किया गया है। वादी—सम्वादी स्वरों में 9 अथवा 13 श्रुतियों की तथा विवादी में दो श्रुतियों की दूरी मानी गयी है।
- षड्ज, मध्यम एवं पंचम की चार—चार, गान्धार व निषाद की दो—दो और ऋषभ व धैवत् की तीन—तीन श्रुतियॉ मानी गयी हैं।

नाट्यशास्त्र को प्राचीन संगीत का आधार ग्रन्थ माना जाता है। इस प्रकार भरतकृत नाट्यशास्त्र में जहॉ संगीत सम्बन्धी सामग्री प्राप्त होती है वहीं इससे यह भी सिद्ध होता है कि उस समय तक संगीत अत्यन्त विकसित अवस्था में था। जनमानस में संगीत श्रुति, स्वर, ग्राम मूर्च्छना एवं जाति आदि के द्वारा नियमबद्ध और सिद्धान्तबद्ध होकर शास्त्रीय संगीत का रूप धारण कर चुका था।

गुप्तकाल में अन्य कलाओं के साथ ही संगीतकला भी उच्चपदासीन थी। एक सिक्के पर राजा समुद्रगुप्त का वीणा सदृश वाद्य बजाते हुए चित्र प्रदर्शित है। अन्य गुप्त राजाओं की संगीत प्रियता का आभास इस युग की स्थापत्य कला, मूर्तिकला और चित्रकला के अनेकानेक उदाहरणों से मिलता है। महाराज विक्रमादित्य ने बृहत् नाट्यशालाओं और संगीतशालाओं का निर्माण करवाया। महाकवि कालिदास के काव्य में एवं नाटकों में गुप्तकालीन संगीत का आंशिक परिचय

मिलता है। कालिदास के ''कुमारसम्भवम्'', ''मालविकाग्निमित्रम्'' एवं अभिज्ञान–शाकुन्तलम्'' आदि ग्रंथों में सांगीतिक शब्दों का प्रयोग मिलता है।

<u>दत्तिल कृत दत्तिलम्</u> – भरतपुत्र दत्तिल ने ''दत्तिलम्'' की रचना इसी काल में की। यह ग्रंथ भी नाट्यशास्त्र के समान भारतीय संगीत की एक गौरवशाली रचना है। नाट्यशास्त्र के विपरीत इसमें केवल गान्धार ग्राम का उल्लेख है। विवादी स्वरों की दूरी केवल दो श्रुति मानी गई है, किन्तु सम्वादी स्वरों की दूरी भरत के ही समान है। इसमें भरत की 18 जातियॉ मानी गई हैं।

- **हर्षवर्धन** के काल में संगीत का विकास निर्बाध गति से चलता रहा। इसी काल में मतंगमुनि द्वारा ''बृहद्देशी'' नामक ग्रन्थ की रचना हुई। उन्होंने जाति–गायन के स्थान पर राग–गायन का उल्लेख किया। संगीत के इतिहास में सर्वप्रथम इसी ग्रंथ में ''राग'' शब्द का प्रयोग किया गया। आज राग का कितना महत्व है यह किसी से छिपा नहीं। नारद कृत ''नारदीय–शिक्षा'' का रचनाकाल भी यही है।

<u>मतंग मुनि कृत बृहद्देशी</u> – इस ग्रन्थ के समय के विषय में अनेक मत हैं। कुछ विद्वान इसे तीसरी शताब्दी का, कुछ चौथी शताब्दी का, कुछ 5वीं शताब्दी का और कुछ छठी शताब्दी का ग्रन्थ मानते हैं। इस ग्रन्थ में निम्नलिखित सामग्रियॉ प्राप्त होती हैं :–

- संगीत के इतिहास में सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ में 'राग' शब्द प्रयोग किया गया है।
- इसमें ग्राम और मूर्च्छना का विस्तृत वर्णन है, किन्तु गांधार ग्राम का उल्लेख मात्र किया गया है।
- साम गायन के प्रारम्भिक तीन स्वरों का वर्णन है।
- इसमें भी दत्तिल के सम्वादी स्वरों की 9 अथवा 13 श्रुतियों की तथा विवादी स्वर 20 श्रुतियों की दूरी पर स्वीकार किया गया है।
- इस पुस्तक में वर्णित जाति के 10 लक्षण भरतकृत नाट्यशास्त्र के सदृश हैं।
- जाति के 7 प्रकारों में राग–जाति भरत के समान है।

<u>नारद कृत नारदीय शिक्षा</u> – इस ग्रन्थ की रचना काल के विषय में भी विद्वानों के अनेक मत हैं। अधिकांश विद्वान इसे दसवीं और बारहवीं शताब्दी के बीच का मानते हैं। इसमें 7 ग्राम रागों, जैसे षाडव, मध्यम, षडज, साधारिता आदि का उल्लेख है। नारदीय शिक्षा में प्रथम बार पुरूष राग और स्त्री राग के आधार पर आगे चलकर राग–रागिनी पद्धति का विकास हुआ।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त शिला–लेख, तमिल ग्रन्थ 'पारिपाडल' आदि द्वारा इस काल के संगीत के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

इस प्रकार प्राचीन काल के इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि इस काल में संगीत के विकास को अनुकूल वातावरण मिला तथा संगीत अपने विकास तथा उच्च शिखर पर पहुंच गया था। यह समय भारतीय संगीत का स्वर्ण युग था।

अभ्यास प्रश्न

क) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. सामवेद् में संगीत के विषय में सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. संगीत के प्राचीन कालीन इतिहास के विषय में विस्तार से लिखिए।
3. वैदिक कालीन संगीत के विषय में विस्तार से वर्णन कीजिये।
4. संदिग्ध काल में लिखे गये संगीत सम्बन्धी ग्रन्थों के विषय में बताइये।
5. 'नाटयशास्त्र' ग्रन्थ किसने लिखा? 'नाट्यशास्त्र' भारतीय संगीत का आधारभूत ग्रन्थ है। स्पष्ट कीजिए।
6. जातिगायन किस काल में प्रचलित था? जातिगायन के लक्षणों के विषय में बताइये।
7. जातिगायन के लक्षणों की आधुनिक राग–लक्षणों से तुलना कीजिए।

8. टिप्पणी लिखिए:

(क) मौर्य काल में संगीत का विकास (ख) बौद्ध काल में संगीत का विकास

(ग) वृहद्देशी

9. स्वरों की उत्पत्ति के विषय में विस्तार से बताइये।
10. सामगान के विषय में सविस्तार व्याख्या कीजिए।
11. प्राचीन कालीन वाद्यों का सविस्तार वर्णन कीजिए।

ख) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. ''वेदानां सामवेदोऽस्मि'' इस कथन की व्याख्या कीजिये।
2. वैदिक काल में कितने स्वर प्रयोग जाते थे? स्पष्ट कीजिये।
3. रामायण काल में किन–किन अवसरों पर संगीत का प्रयोग होता था?
4. संगीत का प्राचीनतम् ग्रन्थ कौन–सा है?
5. गुप्तकाल में संगीत के विकास पर प्रकाश डालिए।
6. बौद्धधर्म में संगीत के विकास पर प्रकाश डालिए।
7. सर्वप्रथम विकृत स्वर किस ग्रन्थकार ने बताये?
8. वृन्दगान किसे कहते है? वृन्दगान की परम्परा किस काल में प्रारम्भ हुई?
9. भगवान श्रीकृष्ण संगीत की किन–किन विधाओं में पारंगत थे?
10. 'सामगान' में कितने स्वर प्रयुक्त होते हैं? बताइये।
11. महाभारत कालीन संगीत के विषय में संक्षेप में बताइये।

ग) एक पंक्ति अथवा एक शब्द में उत्तर वाले प्रश्न :–

1. पूर्व पाषाण काल में आधुनिक मंजीरा वाद्य के समय पत्थर से निर्मित वाद्य का नाम बताइये।
2. 'सामगायन में कितने स्वर प्रयुक्त किए जाते थे?
3. नाट्शास्त्र के लेखक का नाम बताइये।
4. राग शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख किस ग्रन्थ में हुआ है?
5. काकली निषाद किस ग्रन्थ में उल्लिखित है?
6. दत्तिलम द्वारा किस ग्रन्थ की रचना हुई।
7. अज्ञातवास में अर्जुन ने किस नर्तकी का रूप धारण किया?
8. किस काल में भारतीय संगीत यूनान पहुॅचा?
9. 'गरवा' नृत्य का प्रारम्भ किस काल में हुआ?
10. 'नारदीय शिक्षा'' ग्रन्थ के लेखक का क्या नाम है?

घ) रिक्त स्थान भरिये :–

1. वेदो में.. संगीतमय है।
2. भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में ....और..........................दो विकृत स्वर बताये हैं।
3. वृहद्देशी के लेखक ....हैं।
4. ....ग्रन्थ में प्रथम बार पुरुष व स्त्री राग का विवरण प्राप्त होता है।
5. दस लक्षणों से युक्त विशिष्ट स्वर सन्निवेश .... कहलाता है।
6. ....काल में सातों स्वर प्रकाश में आ चुके थे।
7. पाणिनी काल में गायिकाओं को.......................कहा जाता था।
8. ....काल में वृन्दगान की परम्परा प्रारम्भ हुई।
9. जातिगायन का प्रथम लक्षण .... है।
10. तीन ग्राम .... हैं।

ड़) बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1. ईसा से लगभग 2000 वर्ष पूर्व का काल कहलाता है–
   - क. प्रागैतिहासिक काल ख. आधुनिक काल
   - ग. प्राचीन काल घ. वैदिक काल
2. आधुनिक कालीन भारतीय संगीत का प्रादुर्भाव माना गया है–
   - क. मुगल काल ख. सामगान से
   - ग. पाणिनी काल घ. बौद्धकाल से
3. 'ग्रामो' की संख्या मानी गयी है–
   - क. दो ख. चार
   - ग. तीन घ. सात
4. जाति गायन के लक्षण हैं–
   - क. पॉच ख. सात
   - ग. दस घ. ग्यारह

5. आधुनिक वायलिन वाद्य किस वैदिक कालीन वाद्य का परिष्कृत रूप है–
   क. तुरही ख. दुन्दुभि
   ग. शंख घ. रावनास्त्र
6. पाणिनी काल में हाथ से ताल देने वाले को कहा जाता था–
   क. गाथक ख. गायनी
   ग. पाणिध घ. गायन

7. नाट्यशास्त्र मुख्यतः ग्रन्थ है–
   क. नाटकों के सम्बन्ध में ख. महाकाव्यों के सम्बन्ध में
   ग. संगीत के सम्बन्ध में घ. धर्म के सम्बन्ध में
8. ग्राम कहते हैं–
   क. औडव–सम्पूर्ण को ख. स्वर–समूह को
   ग. जाति गायन को घ. स्वरों के व्यवस्थित क्रम को
9. स्वरो के क्रमानुसार आरोह–अवरोह को कहते हैं–
   क. स्वरित ख. मूर्च्छना
   ग. ग्राम घ. जाति
10. घुंघुरू' का प्रयोग सर्वप्रथम किस काल में हुआ?
    क. प्रागैतिहासिक काल ख. संदिग्ध काल
    ग. वैदिक काल घ. लौह युग

4.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप भारतीय संगीत के प्राचीन काल से परिचित हो चुके होंगे। भारतीय संगीत का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव मनोभावों का है। सभ्यता के प्रत्येक चरण में संगीत की सुमधुर स्वर–लहरी किसी न किसी रूप में विद्यमान होती रही हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न तथ्यों को जान चुके होंगे :–

- वेदों के रचनाकाल को वैदिक युग कहा गया है।
- वैदिक काल में संगीत उच्चस्तर पर प्रतिष्ठित था।
- इसी युग में सातों स्वरों की उत्पत्ति हुयी।
- संगीत के माध्यम से ही ईशवरोपासना का मौलिक भाव वैदिक काल में ही सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित हुआ।
- भरत मुनि द्वारा भारतीय संगीत का आधारभूत ग्रन्थ नाट्यशास्त्र की रचना भी इसी काल में की गयी है।
- दत्तिल द्वारा 'दत्तिलम्, मतंगमुनि द्वारा बृहद्देशी, नारद कृत नारदीय शिक्षा जैसे संगीत सम्बन्धी ग्रन्थों का रचना काल भी प्राचीनकाल ही है।

4.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ग) एक पंक्ति अथवा एक शब्द में उत्तर वाले प्रश्न :–

1. अग्सा 2. तीन 3. भरत 4. बृहद्देशी
5. नाट्यशास्त्र 6. दत्तिलम 7. बृहन्नला 8. मौर्यकाल
9. शंगुकाल 10. नारद

घ) रिक्त स्थान भरिये :–

1. सामवेद 2. अन्तर गन्धार व काकली निषाद 3. मतंग

4. नारदीय शिक्षा 5. जाति 6. वैदिक काल 7. गायनी
8. संदिग्ध 9. ग्रह 10. षड्ज, मध्यम व गांधार

ड़) बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1. (घ) वैदिक काल 2. (ख) सामगान से 3. (ग) तीन 4. (ग)दस
5. (घ) रावनास्त्र 6. (ग) पाणिध 7. (क) नाटकों के सम्बन्ध में

8. (घ) स्वरों के व्यवस्थित क्रम को 9. (ख) मूर्च्छना 10. (ख) संदिग्ध काल

4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जोशी, श्री उमेश, *भारतीय संगीत का इतिहास*, मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, द्वितीय संस्करण 1969।
2. परांजपे, श्री शरच्चंद्र श्रीधर, *भारतीय संगीत का इतिहास*, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 1969(वैदिक काल से गुप्त काल तक)।
3. वृहस्पति आचार्य, *मुसलमान और भारतीय संगीत*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण, 1974।
4. जायसवाल, श्री राधेश्याम, *भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास*, वाराणसेय संस्कृत संस्थान, वाराणसी प्रथम संस्करण 1983।
5. शुक्ल, श्री हीरालाल, *आदिवासी संगीत*, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ गन्थ अकादमी, भोपाल, प्रथम संस्करण, 1986।
6. वर्मा, सुश्री रीता, *प्राचीन भारत का इतिहास*, बोहरा प्रकाशन जयपुर, प्रथम संस्करण, 1981।
7. शर्मा, डॉ0 स्वतंत्रा, *भारतीय संगीत का ऐतिहासिक विश्लेषण*, टी0एन0, भार्गव एण्ड संस, कटरा, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण– 1988।
8. श्रीवास्तव, सुश्री धर्मावती, *प्राचीन भारत में संगीत (वैदिक काल से गुप्तकाल तक)*, संशोधित संस्करण, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1967।
9. रानी, डॉ0 संध्या, *उ0प्र0 के रूहेलखण्ड क्षेत्र की संगीत परम्परा*, रामपुर रज़ा लाइब्रेरी, रामपुर (उ0प्र0)।
10. साभार गूगल।
11. Bandopadhya Shripad, The Music of India, Treasure House of Books, Bombay, IIIrd edition, 1970.
12. Eathel Rosenthal, The Story of Indian Music and its Instruments, Oriental Books, New Delhi.
13. Pingle, B.A., History of Indian Music, Indological Book House, Delhi, 1985.
14. Deva B.C,Indian Music, Indian Council for Cultural Relations, New Delhi, 1974.

4.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शर्मा, श्री भगवतशरण, *भारतीय संगीत का इतिहास*, संगीत मंदिर, खुर्जा, प्रथम संस्करण 1981।
2. श्रीवास्तव, श्री हरीश्चन्द्र, *राग परिचय भाग–3*, संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मलाका, इलाहाबाद।
3. परांजपे, शरच्चंद्र श्रीधर, *संगीत बोध*, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, द्वितीय संस्करण, 1980।

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राचीन काल में भारतीय संगीत की स्थिति का विस्तृत वर्णन कीजिए।

इकाई 5 – मध्यकाल

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 मध्यकाल
  5.3.1 पूर्व मध्यकाल
  5.3.2 उत्तर मध्यकाल
5.4 सारांश
5.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रदर्शन कला–संगीत में स्नातकोत्तर, (एम0पी0ए0एम0–501) पाठ्यक्रम की पांचवी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप सौन्दर्यशास्त्र, रस व छन्द से परिचित हो चुके होंगे। आप यह भी जान चुके होंगे कि इनका भारतीय संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। आप प्राचीन काल से भी अवगत हो चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में भारतीय संगीत के इतिहास के अन्तर्गत मध्यकाल का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत है। मध्यकाल के विभिन्न समय कालों में संगीत की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। संगीत विद्वानों द्वारा रचित, इस काल के ग्रन्थों का उल्लेख भी इस इकाई में किया गया है, जो आपके संगीत ज्ञान की वृद्धि में उत्प्रेरक का कार्य करेगा।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ चुके होंगे कि मध्यकाल में भारतीय संगीत की स्थिति क्या थी और विद्वानों द्वारा संगीत के प्रचार–प्रसार के लिए क्या–क्या प्रयास किए गए। आप मध्यकाल के संगीत विद्वानों व उनके द्वारा रचित ग्रन्थों के बारे में भी जान चुके होंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझ सकेंगे :–

- पूर्व मध्यकाल में संगीत के विषय में।
- उत्तर मध्यकाल में संगीत के विषय में।
- मध्यकाल में रचित संगीत सम्बन्धी ग्रन्थों के विषय में।
- पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में प्राप्त संगीत सम्बन्धी सामग्री के विषय में।
- अमीर खुसरो के भारतीय संगीत में योगदान के सम्बन्ध में।
- संगीत सम्राट तानसेन के विषय में।
- मुगल शासकों के संगीत प्रेम के सम्बन्ध में।

5.3 मध्यकाल

मध्यकाल की अवधि 8 वीं शताब्दी से लेकर 18 वीं शताब्दी तक मानी जाती है। अध्ययन की सुविधा के लिये मध्य काल को मुख्य दो उपभागों में विभक्त किया जा सकता है–

मध्यकाल

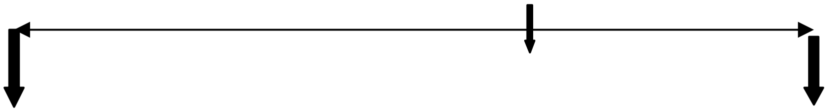

पूर्व मध्यकाल
(8 वीं शताब्दी से 12 वीं शताब्दी तक)

उत्तर मध्य काल
(13वीं शताब्दी से 18 वीं शताब्दी तक)

<u>5.3.1 पूर्व मध्यकाल (8 वीं शताब्दी से 13 वीं शताब्दी तक)</u> – पूर्वमध्यकाल की अवधि 8 वीं शताब्दी से 12 वीं शताब्दी तक मानी जाती है। इस समय भारतवर्ष में छोटे–छोटे राज्य स्थापित होने तथा उनके आपस में युद्धरत रहने के कारण काफी निराजनक अराजक स्थितियॉ उत्पन्न हो गयी थी जिसका मानव जीवन तथा संगीत पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। मौर्य तथा गुप्तकाल में संगीत की जो अविछिन्न धारा सार्वभौमिकता के रुप में स्थापित हो गयी थी, वह इस काल में वर्गो में विभक्त हो गयी। इस काल के विभिन्न राज्यों के शासक जो अधिकाशतः राजपूत थे, युद्धप्रिय होने के साथ ही साथ संगीत प्रेमी भी थे। इनके समय में दीपावली जैसे पर्वोत्सवों पर रासलीला नृत्य एवं प्रकाश नृत्य प्रस्तुत किया जाता था। विजयदशमी के शुभ अवसर पर नव दुर्गा की पूजा गा–बजाकर की जाती थी। मंदिरों में धूम–धाम से उत्सवों का आयोजन किया जाता था। इस काल में <u>मंदिर संगीत</u>(Temple Music) का विकास हुआ ।

राजपूत संगीतकारों का सम्मान करते थे। उनके राजदरबारों में अनेक संगीतज्ञों और कलाकारों को आश्रय मिला करता था। राज्याश्रय प्राप्त होने से संगीत कला का विकास भी हुआ। इस काल के कलाकारों की मनोवृति संकीर्ण एवं ईष्यापूर्ण थी। इस समय के कलाकार अपने संगीत ज्ञान को छिपाकर रखते थे। उनका संगीत पीढी–दर–पीढी मौखिक परम्परा से चला करता था। निःसंतान होने की स्थिति में उनका संगीत उन्हीं के साथ समाप्त हो जाता था। इस संकीर्ण मनोवृति के कारण भारतीय संगीत में घरानों का सूत्रपात हुआ।

जिन राजाओं ने संगीत को राज्याश्रय दिया उनके महलों में राग–रागनियों के चित्र भी बनाये गये। संगीत राज्याश्रय प्राप्त हो जाने के कारण वह सामन्तशाही बन गया था। संगीत जन–सामान्य के जीवन से हटता गया और उसमें सामान्तशाही–ऐश्वर्य प्रवेश करता गया। सामान्य जन–जीवन से शास्त्रीय संगीत पृथक हो जाने के कारण लोक संगीत का निर्माण होने लगा।

नौ वीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक भारत में संगीत की अच्छी उन्नति हुई। उस समय के ग्रन्थों में 'संगीत रत्नाकर' व 'गीत गोविन्द' को देखने से यह ज्ञात होता है कि जिस प्रकार आजकल राग–गायन प्रचलित है, उसी प्रकार उस काल में प्रबन्ध गायन प्रचलित था इसलिये इस काल को **'प्रबन्ध काल'** भी कहते हैं। पूर्व मध्यकाल मे 8 वीं0 शताब्दी से 12 वीं शताब्दी तक के मध्य अनेक संगीत ग्रन्थों की रचना हुई जिनका विवरण निम्नानुसार है :–

- **<u>संगीत मकरन्द</u>** – 7वीं और 9वीं शताब्दियों के मध्य में नारद नामक भारतीय विद्वान ने ''संगीत–मकरन्द'' नामक ग्रन्थ की रचना की। 'संगीत–मकरन्द' के लेखक 'नारदीय शिक्षा' के प्रणेता नारद से भिन्न प्रतीत होते हैं। इस ग्रन्थ में प्रथम बार पुरूष राग, स्त्री राग और नपुन्सक रागों का वर्गीकरण किया गया है। उन्होंने 'रागिनी' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। इस ग्रन्थ में 20 पुरूष राग, 24 स्त्री राग और 13 नपुन्सक राग बताये गये हैं। साथ में स्वर, मूर्च्छना, राग, ताल आदि विषयों को लिया गया है। रागों के इस वर्गीकरण का आधार उनका रस सिद्धान्त है। नारद का कहना है कि रौद्र, अदभुत तथा वीर रस के लिए पुरूष राग, श्रृंगार, हास्य तथा करूण रस के लिए स्त्री राग और भयानकतथा शान्त रस की उत्पत्ति के लिये नपुन्सक रागों को प्रयोग में लाना चाहिए। उन्होंने इस ग्रन्थ में रागों की जातियॉ (सम्पूर्ण, षाड़व, व औड़व) तथा रागों के गायन समय को भी बताया है। उन्होंने इस ग्रन्थ में 19 अलंकारो का निरूपण किया है। इस ग्रन्थ में नखज, वायुज, चर्मज, लोहज और शरीरज नाम से नाद के पॉच भेदों का उल्लेख है तथा वीणा के अटठारह भेदों का वर्णन किया है। नारद ने 101 तालों को परिभाषित करके उनका वर्णन भी किया गया है। ताल शब्द की निष्पत्ति करके दस प्राणों का उल्लेख किया है। मार्ग, मात्रा, क्रिया, अंग, ग्रह आदि पर भरतोक्त मान्यताओं की पुष्टि की है।''

- **<u>गीत गोविन्द</u>** – गीत गोविन्द की रचना 12वीं शताब्दी में जयदेव ने की। जयदेव उच्चकोटि के कवि होने के साथ–साथ उत्तम संगीतकार भी थे इसलिए इनको वाग्गेयकार भी कहा जा सकता है। गीत–गोविन्द जयदेव की अमर कृति है। यह ग्रन्थ संस्कृत में लिखा गया है। इसका अनुवाद दूसरी भाषाओं में भी हो चुका है। इस ग्रन्थ में राधा कृष्ण की प्रेम–लीलाओं का भी वर्णन किया गया है। यह संगीतमयी ग्रन्थ माना जाता है क्योंकि इसके पदो के ऊपर राग और तालों के नाम अंकित किए गए हैं। इस ग्रन्थ का स्थायी भाव प्रेम है परन्तु यह प्रेम भौतिक न होकर आत्मा–परमात्मा के मिलन का आध्यात्मिक प्रेम है। गीत–गोविन्द संगीत के क्षेत्र में बहुत उच्च स्थान रखता है। इसमें प्रबन्धों व गीतों का संग्रह है, किन्तु स्वरलिपि न होने के कारण उन्हें उसी प्रकार गाया नहीं जा सकता।

<u>5.3.2 उत्तर मध्य काल (13 वीं शताब्दी से 18 वीं शताब्दी तक)</u> – इस काल का प्रारम्भ 13वीं शताब्दी के बाद से 18वीं शताब्दी तक माना जाता है। इस काल में फारस और उत्तर भारतीय संगीत का मिश्रित रूप भली–भॉति विकसित हुआ। अतः इसे विकास काल कहा जाने लगा। मुसलमानों का प्रभाव विशेषकर उत्तरी संगीत पर पड़ा। अतः उत्तरी संगीत धीरे–धीरे दक्षिणी संगीत से अलग होने लगा। अधिकांश मुसलमान राजाओं को संगीत से विशेष प्रेम था, अतः उन लोगों ने अपने दरबार में संगीतज्ञों को आश्रय दिया और संगीत को प्रोत्साहन दिया। इस काल में संगीत विकास का क्रम निम्नानुसार है :–

- **<u>अलाउद्दीन खिलजी (1269–1316)</u>** – इनके शासन काल में संगीत का बहुत विकास हुआ। खिलजी ने संगीत के प्रचार–प्रसार में अत्यन्त योगदान किया। इनके दरबार में अमीर खुसरो और गोपाल नायक जैसे उच्चकोटि के संगीत कलाकार थे।

- **<u>अमीर खुसरो</u>** – यह अलाउद्दीन के दरबार में प्रमुख रत्न थे। खुसरो फारसी के प्रसिद्ध कवि और महान् संगीतकार थे। अमीर खुसरो को कौल, कलवाना, कव्वाली, गजल और तराना आदि का आविष्कारक माना जाता है। सितार और तबले के आविष्कार का श्रेय भी अमीर खुसरो को ही दिया जाता है। इसके बारे में विद्वानों में मतभेद हैं। यदि इनको आविष्कारक न भी माना जाए तो भी यह जरूर कहा जा सकता है कि अमीर खुसरो ने इन वाद्यों के प्रचार के लिए विशेष प्रयत्न किए। अमीर खुसरो ने अपना समस्त जीवन ही संगीत के लिए व्यतीत कर दिया।

अमीर खुसरो ने हिन्दुस्तानी संगीत में फारसी संगीत का मिश्रण कर राग–रागिनी की एक नवीन प्रणाली का आविष्कार किया। हिन्दुस्तानी 6 राग और 36 रागनियों तथा ईरानी 12 मुकामों का समन्वय किया जिसके परिणामस्वरूप हिन्दुस्तानी संगीत में नवीनता के दर्शन हुए। अमीर खुसरो ने कोल, कलवाना, नक्शेगुल, तराना आदि का आविष्कार किया। इनके द्वारा निर्मित रागिनियों में ईमन रागिनी गायकों में आज भी विशेष प्रिय है। उन्होंने भारतीय 'हिण्डोल' तथा फारसी 'मुकाम' राग मिलाकर 'इयामन' या 'इमन' राग की सृष्टि की थी।

- **<u>गोपाल नायक</u>** – खिलजी काल के दूसरे प्रमुख संगीतकार गोपाल नायक थे। गोपाल नायक देवगिरि राज्य के प्रसिद्ध गायक थे। 1294 ई0 में अलाउद्दीन ने देवगिरि पर हमला किया और विजय प्राप्त की। विजय प्राप्त करने के बाद अलाउद्दीन वहां के बहुत सारे गायकों को बन्दी बनाकर दिल्ली ले गया क्योंकि वह संगीत प्रेमी था। गोपाल हिन्दू ब्राह्मण थे। उनको संस्कृत भाषा का काफी ज्ञान था। वह संगीत के क्रियात्मक पक्ष में ही निपुण नहीं थे बल्कि संगीत के सैद्धान्तिक पक्षों का भी भलीभांति ज्ञान रखते थे। इन्होंने ख्याल शैली के विकास के लिए बहुत यत्न किए। बडहंस, पीलू आदि रागों का आविष्कारक इनको माना जाता था। अलाउद्दीन खिलजी के समय में ही 13 शताब्दी के उत्तरार्ध में महान संगीतज्ञ शारंगदेव ने भारतीय संगीत के आधार एवं अमर ग्रंथ संगीतरत्नाकर की रचना की थी।

- **<u>संगीत रत्नाकर</u>** – 13 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में शांरगदेव ने 'संगीत रत्नाकर' नामक ग्रन्थ लिखा था। इनमें गायन, वादन तथा नृत्य तीनों का वर्णन है। इस ग्रन्थ में स्वराध्याय, राग विवेकाध्याय, प्रकीर्णाध्याय, प्रबन्धाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय और नर्तनाध्याय हैं। प्रथम अध्याय मे नाद का स्वरूप, नादोत्पत्ति और उसके भेद, सारणा–चतुष्टय, ग्राम–मूर्च्छना, तान निरूपण, स्वर और वर्ण, अलंकार और जातियों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में ग्राम राग और उनके विभाग तथा रागांग, भाषांग शब्दों का स्पष्टीकरण और देशी राग और उनके नाम आदि दिये गये हैं। तृतीय अध्याय में वाग्गेयकार के लक्षण, गीत के गुण–दोष, गायक के गुण–दोष, और स्थाय इत्यादि का विवरण है। चतुर्थ अध्याय मे गान के निबद्ध–अनिबद्ध भेद, धातु व प्रबन्ध के भेद और अंगो का विवरण है।

पंचम अध्याय में तालों के विषय में तथा षष्ट अध्याय मे तत्, सुषिर, अवनद्ध और घन वाद्यों के भेद, वादन विधि और वाद्यों तथा वादकों के गुण दोष दिये गये हैं। सप्तम अध्याय नृत्य और नाट्य पर है। इसमें नर्तन सम्बन्धी विवरण दिया गया है।

- <u>बाबर काल में संगीत</u> – मुगलों के प्रथम बादशाह जहीरूद्दीन मुहम्मद बाबर थे। बाबर स्वयं एक अच्छे संगीतकार थे। बाबर गाने में प्रवीण था। गायन विधा में दक्षता के साथ–साथ संगीतकारो का आदर–सम्मान करना तथा उनकी कला से प्रभावित होकर उन्हें पुरस्कृत भी करता था। बाबर के समय भारतीय संगीत उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होता गया। इस काल में कल्लिनाथ ने 'संगीत रत्नाकर' की टीका लिखी। इस काल में भक्ति आन्दोलन ने जोर पकड़ा। भक्ति–आन्दोलन के प्रचारक कबीर, रामानन्द, चैतन्य, नामदेव और वैष्णव मत के अनुयायी आदि ने परमात्मा के गुणों का गायन संगीत के माध्यम से किया। भक्ति–आन्दोलन के प्रचारकों ने संगीत की अपार शक्ति का अनुभव कर लिया था। बाबर युग में धर्म और संगीत का सम्मिश्रण हुआ।

- <u>हुमायूँ काल में संगीत</u> – बाबर के बाद उसका पुत्र नासिरूद्दीन हुमायूँ गद्दी पर बैठा। हुमायूँ के शासन काल में भी संगीत एवं संगीतकारों को मान–सम्मान प्राप्त हुआ। विद्वानों के मतानुसार हुमायूँ ने संगीत को संकट कालीन अवस्था में भी नहीं छोड़ा। उन्हें संगीत अत्यन्त प्रिय था। बाबर का विश्वास था कि संगीत से मानव जीवन में एक नवीन रोशनी आती है, एक नवउत्साह का संचार होता है इसलिए वह अंत समय तक संगीत का महान उपासक बना रहा। हुमायूँ काल में नये–नये भजन भी निर्मित हुए। इन भजनों द्वारा जहॉ एक ओर संगीत का प्रचार–प्रसार हुआ वही दूसरी ओर आध्यात्मिक ज्ञान भी आम जनता में प्रसारित हुआ। सूफी मत का भी अधिक प्रचार हुआ। सूफी कवियों ने भी अपनी रचनाओं का संगीत के माध्यम से प्रचार किया। इसके परिणाम स्वरुप नैतिक चरित्र भी उन्नत हुआ। इसके शासनकाल में कर्नाटक के प्रसिद्ध ग्रन्थकार रामामात्य जी ने 'स्वरमेल कलानिधि' की रचना की।

- <u>राग तरंगिणी</u> – इसी काल की यह सर्वप्रथम पुस्तक लोचन कृत है। इसकी रचना 15वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में मानी जाती है। इनके अनुसार शुद्ध थाट काफी है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि सम्पूर्ण रागों को कुल 12 मेलों (थाटों) में विभाजित किया गया है। आधुनिक थाट राग वर्गीकरण का बीजारोपण 'राग–तरंगिणी' में हुआ ऐसा विद्वत लोगों का विश्वास है।

- <u>मानसिंह तोमर</u> – (1486–1516)ग्वालियर के संगीत सम्प्रदाय का प्रारम्भ राजा मानसिंह तोमर के समय से होता है। इन्हीं के दरबार में प्रसिद्व नायक बक्सू रहते थे जिनका सुमधुर संगीत तानसेन के बाद ही अपना अलग स्थान रखता है। बक्सू मानसिंह तोमर के पुत्र, राजा विक्रमाजीत के दरबार में भी रहे।

  सर डब्लू0 आंसले के अनुसार संगीत पर ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर की आज्ञा से संकलित किए हुये ''मान कुतूहल'' का अनुवाद फकीरउल्ला द्वारा ''राग दर्पण'' के नाम से किया था।

- <u>बैजू बावरा</u> – राजा मानसिंह तोमर के दरबार में बैजू बावरा एक प्रसिद्ध गायक थे। संगीत के महान ग्रन्थ ''राग कल्पद्रुम'' में तानसेन और बैजू के अनेक ध्रुपद संकलित हैं। कहा जाता है कि बैजू के सहयोग से ही राजा मानसिंह तोमर ने ध्रुपद शैली का परिष्कार और प्रचार किया। राजा मानसिंह तोमर ने अपनी रानी मृगनयनी को संगीत शिक्षा देने के लिए बैजू वावरा को संगीत शिक्षक नियुक्त किया था। गुजरी–तोडी और मंगल गुजरी आदि राग मृगनयनी के नाम पर बने हैं। मृगनयनी गूजर

कुल की थी और राइ गॉव की दरिद्र किसान की कन्या थी। बैजू ने अनेक लोकप्रिय गीत व ध्रुपद लिखे हैं। बैजू को वीणा–वादन पर भी उत्तम अधिकार था। बैजू स्वामी हरिदास के शिष्य थे।

बैजू बाबरा ने होरी गायन शैली का तथा धमार ताल का आविष्कार किया। बैजू ने कुछ नए रागों जैसे लंकदहन, सारंग, धूलिया मल्हार आदि की रचना की।

- **सुल्तान हुसैन शर्की काल में संगीत (1458–1499)** – जौनपुर के राजा सुल्तान हुसैन शर्की एक महान संगीतकार थे। कहा जाता है कि सुल्तान हुसैन शर्की ने ख्याल शैली का आविष्कार किया किन्तु इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। ख्याल के आविष्कार के संबन्ध में भले ही मतभेद हो परन्तु यह अवश्य कहा जाता है कि सुल्तान हुसैन शर्की ने ''ख्याल शैली'' के प्रचार–प्रसार के लिए विशेष योगदान दिया। इन्होंने कई नवीन रागों की रचना की थी–जैसे जौनपुरी तोड़ी, सिन्धी भैरवी, श्याम के विभिन्न प्रकार जैसे मल्हार श्याम, बसन्त श्याम आदि।

- **अकबर काल में संगीत** – अकबर एक अच्छा शासक होने के साथ–साथ संगीत–प्रेमी भी थे। अकबर स्वयं एक महान संगीतज्ञ थे। संगीत का प्रेमी होने के कारण उसने नक्काड़ा नामक वाद्य को बजाना सीखा और इसमें निपुणता हासिल की। अकबर के काल में संगीत का अत्यधिक प्रचार–प्रसार हुआ।

अकबर के जन्म के समय उसके पिता हुमायूँ को भारत छोड़कर फारस भागना पड़ा। 12 वर्ष की अल्पायु में ही अकबर को राज्यभार संभालना पड़ा। अकबर एक महत्वाकांक्षी शासक था। उसने अपने राज्य का विस्तार पश्चिमी सीमा के कन्धार से पूर्व में आसाम तक और उत्तर में कश्मीर से दक्षिण में अहमद नगर तक किया। अकबर एक प्रतिभाशाली शासक ही नहीं, वरन् समाज सुधारक भी था। उसने हिन्दू–मुसलमानों को एक सूत्र में बांधा। जाति–भेद की भावना को दूर किया।

अकबर के राज्यकाल में समस्त कलाओं का उत्कर्ष हुआ जिससे कलाकारों और विद्वानों को दरबार में उच्चपद और सम्मान प्राप्त हुआ। अकबर का राज्यकाल संगीत में स्वर्ण–युग कहा जाता है क्योंकि उसके राज्यकाल में संगीत कला सर्वोच्च शिखर पर पहुॅच गयी थी ।

अकबर ने अपने दरबार में गायकों तथा वादकों को विशेष रूप से स्थान दिया। अकबर संगीतकारों का बहुत आदर करते थे और समय–समय पर वह उन्हें पुरस्कार प्रदान कर प्रोत्साहित भी करते थे। इनके दरबार में दूसरी रियासतों के कलाकार भी अपने कला–प्रदर्शन के लिए आते थे। इनके दरबार में तानसेन, नायक बैजू, तानतरंग खां, गोपाल, विचित्र खां, रामदास, सुरज्ञान, मियाचॉद, आदि प्रमुख संगीतकार थे।

- **तानसेन** – भारतीय संगीत के क्षेत्र में तानसेन को संगीत का सम्राट कहा जाता है। तानसेन द्वारा संगीत के क्षेत्र में दिया गया योगदान अद्वितीय है। तानसेन का बचपन का नाम तन्ना मिश्र था। तानसेन बचपन से ही बहुत नटखट था। पढ़ाई की जगह प्राकृतिक वातावरण में बहुत मन लगाता था और जानवरों की आवाज की नकल करने में वह बहुत निपुण था। एक बार स्वामी हरिदास जी अपनी शिष्य–मण्डली के साथ जंगल से जा रहे थे, तो तानसेन ने उनको शेर की आवाज निकालकर डराया। जब स्वामी जी को यह पता चला कि यह आवाज किसी शेर की नहीं किसी बच्चे की है, तो वह उसकी

योग्यता से बहुत प्रभावित हुए और उसको अपना शिष्य बनाने का निर्णय किया। तानसेन ने स्वामी जी से संगीत की शिक्षा हासिल करने के बाद संगीत के क्षेत्र में बहुत निपुणता प्राप्त की। उनकी प्रसिद्धि का नाम सुनकर राजा राम चन्द्र ने आपको दरबारी गायक के तौर पर अपने दरबार में रख लिया। तानसेन के समय में प्रमुख गायन शैली ध्रुपद थी। तानसेन ने अनेक ध्रुपदों की रचना की और उनका गायन किया। जिसकी चर्चा सुनकर अकबर ने तानसेन को दिल्ली में बुलाया। तानसेन का गायन सुनकर अकबर बहुत प्रभावित हुए और तानसेन को रत्न की उपाधि देकर दरबार में रख लिया। अकबर ने 'कण्ठाभरणवाणीविलास' की उपाधि देकर तानसेन को सम्मानित किया।

तानसेन ने दरबारी कान्हड़ा, मियां की तोड़ी, मियां की सारंग, मियां की मल्हार आदि रागों की रचना की। दरबारी कान्हड़ा को छोड़कर बाकी रागों के साथ मियां शब्द जोड़ा गया क्योंकि मियां शब्द का प्रयोग तानसेन के नाम के साथ किया जाता था। यह सारे राग उत्तर भारत में आज भी प्रचलित है। तानसेन से अकबर के दरबार के दूसरे कलाकार ईर्ष्या करते थे। उन्होंने अकबर बादशाह को तानसेन से दीपक राग सुनने के लिए कहा क्योंकि वह जानते थे कि जब तानसेन यह राग गाते थे तो तपिश पैदा हो जाती थी। इस राग को गाने के बाद तानसेन की हालत बहुत खराब हो गई। इस गर्मी को कम करने के लिए तानसेन की पुत्री ने मल्हार राग गाया। इस तरह के और भी उदाहरण मिलते हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि तानसेन ने संगीत की अच्छी साधना की थी। तानसेन ध्रुपद गायकी के सिद्ध गायक थे। तानसेन ने ध्रुपद गायन शैली को उच्चकोटि तक पहुंचाया। आज भी तानसेन के बनाये ध्रुपद प्राप्त होते हैं। इनके द्वारा लिखित ग्रन्थों में संगीतसार, रागमाला, गणेश स्त्रोत मुख्य हैं जिनमें से गणेश स्त्रोत अप्राप्त है।

तानसेन के पुत्र सूरत सेन और विलास खां ने उनकी संगीत–परम्परा को आगे बढ़ाया। इनका घराना रबाबियों का घराना कहलाया। इनकी लड़की–दामाद, जो वीणा बजाने में निपुण थे, बीनकार कहलाए। तानसेन की वंश परम्परा सेनीया घराना कहलायी।

- **रामदास** – अकबरी दरबार के संगीतज्ञों की सूची में रामदास का नाम दूसरे स्थान पर आता है। आप रामदास मल्हार के आविष्कारक कहे जाते हैं तथा उस समय के महान कलाकार सुरज्ञान खॉ के पिता भी थे। सुरज्ञान खॉ का वास्तविक नाम सुजान दास था, और सुरज्ञान खॉ की उपाधि उन्हें मिली थी। वे अकबर के दरबार में 1602 तक रहे। आपने अनेक पदों की रचना की।
- **चॉद खॉ व सूरज खॉ** – अकबर दरबार के संगीतज्ञ थे। सरमाया–ए–इशरत और सौत–उल–मुबारक ग्रन्थों के अनुसार इनके नामकरण का कारण यह था कि चॉद खॉ रात्री कालीन गाये जाने वाले राग रागिनी गाते थे और उनका उपनाम 'शशि' था जबकि सूरज खॉ दिन में गाये जाने वाले राग गाते थे और अपना उपनाम 'रवि' प्रयुक्त करते थे।

इस काल में वाद्यों में झांझर, बीन, रबाव, किन्नरी, सुरमण्डल जलतरंग, पखावज, उपंग, शहनाई, सारंगी, कठसाल मुहचंग, खंजरी, मृदंग, डफर, झांझ, शंख, श्रंगी, भेरी, नगाड़ा, दुंदुभि, डोल, वेणु जिनांक, मंजीरा, मुरली आदि प्रयोग में लाये जाते थे।

अकबर के समय में वृन्द वादन को नौबत के नाम से जाना जाता था। आइन–ए–अकबरी में इस प्रकार का उल्लेख है कि अकबर के नक्कारखाने में 14 बड़े नौबत, 20 छोटे आकार के नक्कारे, 4

ढोल, 4 कनी, 4 सुरनई, उनके साथ आधार स्वर के वाद्य 2 श्रृंगी या सींग तथा 3 जोड़े बड़े आकार के आघाती (Symbol) और नक्कारा का उल्लेख मिलता है।

भारत में भक्ति की परम्परा बहुत प्राचीन है। भक्ति मनुष्य को दुःख, सुख, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि की भावनाओं से मुक्त करवा देती है। भक्ति का प्राचीन स्वरूप वेदों के द्वारा प्राप्त होता है, परन्तु मध्यकाल में सम्पूर्ण भारत में भक्ति की लहर चली जिसको भक्ति–आन्दोलन का नाम दिया गया। भक्ति आन्दोलन के प्रचारकों ने आम जनता को भक्ति के बुनियादी तत्वों का ज्ञान संगीत के माध्यम से दिया। इन पीरों–फकीरों और संतों ने संगीत को ही अपना प्रमुख साधन माना। इस प्रकार मध्यकाल में हमारे भक्ति संगीत की प्रमुख विभूतियां मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास, कबीरदास आदि प्रमुख थे।

- **स्वामी हरिदास** – स्वामी हरिदास जी तानसेन के गुरू थे तथा आध्यात्मिक संगीत के महान् संगीतज्ञ थे। स्वामी हरिदास जी ने ब्रज भाषा में अनेक ध्रुपदों की रचना की और उन्हें गेय रूप दिया। स्वामी हरिदास उत्तर भारत के महान् वाग्गेयकार थे। स्वामी जी गायन तथा वादन दोनों कलाओं में प्रवीण थे। इन्होंने अनेक शिष्य तैयार किए जिनमें से तानसेन, बैजू बावरा, गोपाल नायक, मदनलाल, रामदास, पं0 सोमनाथ आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

अकबर काल में पुण्डरीक विट्ठल ने सद्रागचन्द्रोदय, रागमाला, रागमंजरी, नर्तन निर्णय, रामामात्य ने स्वरमेलकलानिधि, सूरदास ने सूरसागर, सूररचनावली आदि प्रमुख ग्रन्थों की रचना की। गुरू अर्जुन देव जी ने अपनी और पांच गुरूओं की वाणी के अतिरिक्त दूसरे भक्तों पीर, फकीरों की वाणियों को इकट्ठा करके आदि गुरू ग्रन्थ साहिब संकलित किया है। उनका मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक पक्ष को उभारना था न कि सांगीतिक पक्ष को। संगीत का तो उन्होंने एक मात्र सहारा ही लिया।

- **स्वरमेलकलानिधि** – इसी समय दक्षिणी संगीत विद्वान् रामामात्य ने इस ग्रन्थ की रचना की। इसमें पांच प्रकरण हैं – स्वर प्रकरण, उपोद्धात प्रकरण, वीणा प्रकरण, मेल प्रकरण और राग प्रकरण। स्वर प्रकरण में सात शुद्ध और सात विकृत स्वर माने गए हैं। वीणा प्रकरण में वीणा की डांड पर आपने 14 स्वर स्थापित किए हैं। मेल प्रकरण में 20 थाट का वर्णन है। राग प्रकरण में 20 थाट के अर्न्तगत 63 जन्य रागों का वर्णन मिलता है।

- **सद्रागचन्द्रोदय** – इस ग्रन्थ में दक्षिणी संगीत का विवरण है। इसमें पुण्डरीक विटठल ने 19 थाटों को मानकर उनमें दक्षिण के रागों का वर्गीकरण किया है।

इस प्रकार अकबर के समय में भारतीय संगीत उन्नति के उच्च शिखर तक पहुॅच चुका था।

- **जहॉगीर (1605–1627)** – जहॉगीर अकबर के समान ही कला और साहित्य प्रेमी थे। उन्हें सितार वाद्य में विशेष रूचि थी जिस कारण इस युग में सितार वादन की विशेष प्रगति हुई। इनके दरबार में छत्तर खॉ, विलास खॉ, परवेजदाद खुर्रमदाद, मक्खू इत्यादि प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। जहॉगीर नामा में उल्लेख मिलता है कि शौकी नामक गजल गायक को जहॉगीर ने आनन्द खॉ की उपाधि प्रदान की।

1610 में दक्षिण के विद्वान पं0 सोमनाथ ने ''रागविबोध'' नामक पुस्तक लिखी। इसमें भी उत्तरी और दक्षिणी संगीत को एक में समन्वित करने का प्रयत्न किया गया है।

1625 ई0 में पंडित दामोदर द्वारा संगीत दर्पण की रचना हुई। इस ग्रन्थ के दो अध्याय हैं – पहला स्वर अध्याय और दूसरा राग अध्याय। यह ग्रन्थ हिन्दी, फारसी, गुजराती आदि भाषाओं में लिखा गया है। इस ग्रन्थ में रागों का विशेष वर्णन किया गया है।

- **रागतत्व विबोध** – सोमनाथ के द्वारा लिखित रागतत्व विबोध भी इसी काल की रचना है। इन्होंने कुल 22 श्रुतियां मानीं और इन्होंने सात शुद्ध और 15 अशुद्ध स्वरों का वर्णन 23 मेलों के अर्न्तगत किया।

- **शाहजहॉ (1627–1658)** – जहांगीर की मृत्यु के पश्चात् उनका बेटा शाहजहां गद्दी पर बैठा तो उसने भी अनेक संगीतकारों को राज्याश्रय देकर अपने कला प्रेमी होने का प्रमाण दिया। यह शासक संगीत प्रेमी होने के साथ–साथ गायक भी था। शाहजहां का सुर सुमधुर एवं हृदयग्राही था। ये उर्दू भाषा के गीत बहुत अच्छी तरह से गाते थे। शाहजहॉ के समय से ही संगीत की स्थिति में गिरावट आने लगी थी क्योंकि इस समय अधिकांशतः संगीतज्ञ अनपढ़ थे।

वास्तव में शाहजहॉ के काल से नृत्य और गायन गणिकाओं के हाथ में पूर्णरूपेण चला गया था। संगीत में निम्नता की नींव इस काल पड़ गयी थी। इस काल में संगीतज्ञों की प्रतिष्ठा इतनी उच्च व दैदीप्य मान नहीं रही जितनी कि प्राचीन काल में थी। शाहजहॉ के दरबार में जगन्नाथ, लाल खॉ, विलास खॉ, दिरग खॉ, ताल खॉ आदि संगीतज्ञ थे। जगन्नाथ को **कविराज** और दिरग खॉ को **गुण समुद्र** की उपाधि शाहजहॉ ने प्रदान की। समय–समय पर संगीत सम्मेलन आयोजन किये जाते थे। संगीत प्रतियोगिताएं आयोजित कर विजेताओं को पुरस्कृत भी किया जाता था।

- **संगीत पारिजात** – यह पुस्तक 1650 ई0 में पंडित अहोबल द्वारा लिखी गई। दीनानाथ ने फारसी में इसका अनुवाद किया। इस ग्रन्थ में प्रथम बार वीणा के तार पर बारह स्वरों की स्थापना की गई है। संगीत पारिजात का शुद्ध सप्तक उत्तरी भारत के काफी थाट और दक्षिणी भारत के खरहरप्रिया के सदृश्य है। पं0 अहोबल ने 29 विकृत स्वरों के नाम तो दिये हैं, किन्तु राग अध्याय में कई स्वर छोड़ दिये हैं। वास्तव में उन्होंने एक ही स्वर के लिए कई नाम प्रयोग किये हैं।

- **औरंगजेब(1658–1700)** – औरंगजेब के शासनकाल में संगीत को इतना प्रोत्साहन नहीं मिला क्योंकि वह संगीत प्रेमी नहीं था परन्तु फिर भी संगीत के साधक एकान्त में बैठकर संगीत की साधना करते रहे। इनके शासनकाल में हृदयनारायण ने हृदयकौतुक, हृदय प्रकाश, भावभट्ट ने अनूप संगीत विलास, अनूप संगीत रत्नाकर, अनूप प्रकाश, व्यंकटमुखी ने चतुर्दण्डि प्रकाशिका आदि प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की।

- **अनूप संगीत रत्नाकर, अनूप विलास, अनूप प्रकाश** – भावभट्ट ने यह तीनों ग्रन्थ लिखे हैं। इन ग्रन्थों में संगीत के पारिभाषिक तत्व जैसे स्वर, ग्राम, मूर्छना, अलंकार आदि का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त ध्रुपद गायन शैली और रागों के भेदों के बारे में बताया।

- **हृदयकौतुक और हृदय प्रकाश** – हृदय नारायण के हृदयकौतुक और हृदय प्रकाश नामक ग्रन्थों की रचना औरंगजेब के समय में ही मानी जाती है। इनमें उन्होंने वीणा तार की लम्बाई के आधार पर स्वरों की स्थापना की है। इनमें संगीत के पारिभाषिक तत्वों जैसे वादी, संवादी, विवादी, तान आदि का वर्णन किया है। इन्होंने एक राग, जिसका नाम हृदयराग रखा, की रचना भी की।

- **चतुर्दन्डिप्रकाशिका** – यह ग्रंथ 1660ई0 में दक्षिणी के पं0 व्यंकटमुखी द्वारा लिखा गया है। उन्होंने यह सिद्ध किया कि उस समय के स्वर–सप्तक से अधिक से अधिक 72 थाटों की रचना हो सकती है तथा एक थाट से कुल 484 राग उत्पन्न हो सकते हैं। यद्यपि ग्रन्थकार ने एक सप्तक में 12 स्वर माने हैं, किन्तु एक स्वर के कई नाम भी स्वीकार किये हैं।

- **बहादुर शाह प्रथम** – औरंगजेब का सबसे छोटा प्रिय पुत्र ''मुअज्जम'' बहादुर शाह प्रथम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ''रागमाला', 'ध्रुवपद ''संग्रह'' में इसके नाम से अंकित ध्रुवपद मिलते हैं। सुप्रसिद्ध ''सदारंग'' भी इनके दरबार में थे।

- **मोहम्मद शाह रंगीले** (1719–1748) – बहादुरशाह का पोता मुहम्मद शाह 1719 ई0 में गद्दी पर बैठा। मुहम्मद शाह संगीतकला का अत्यन्त प्रेमी था। इसी कारण उसका उपनाम 'रंगीला' पड़ा इनके दरबार में गायकों के दो प्रमुख वर्ग 'कलावन्त' और कव्वाल थे। इनके दरबार में सदारंग, अदारंग, इच्छा बरस आदि सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ थे जिन्होंने ख्याल बनाये और अपने शिष्यों को सिखाये। यद्यपि वे स्वयं ध्रुवपद गाते थे और अच्छे वीणावादक भी थे। अपनी बंदिशों में इन्होंने सम्राट का नाम मुहम्मद शाह रंगीले दिया है। इसी युग में ख्याल गायकी का प्रचार बहुत तीव्रता से हुआ। इसी युग में 'सितार' वाद्य का आविष्कार हुआ।

'टप्पा' गायन शैली का प्रारम्भ भी इसी काल में 'गुलाम नवी' द्वारा हुआ। गुलाम नवी अच्छे गायक और कवि थे। वह पंजाब के रहने वाले थे और 'मियॉ शोरी' के नाम से प्रसिद्ध हुये। 'टप्पा' गायन शैली अन्य गायन शैलियों से भिन्न प्रकार की है। इसका गायन संक्षिप्त, चंचल प्रकृति का होता है। इसके लिये गले की तैयारी की आवश्यकता होती है। काफी, 'झिंझोटी', 'खमाज', भैरवी आदि रागों में टप्पा की बंदिशें विशेषतया गायी जाती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि जहॉ रंगीले का राज्यकाल शासन की दृष्टि से तो अवनति की दशा की ओर जा रहा था, वहीं संगीत के क्षेत्र में संगीतज्ञों ने नये–नये मार्गों की खोज कर ऐसी नवीन गायन शैलियों का प्रचार कर दिया जिसने प्राचीन ध्रुवपद, धमार गायन शैली के स्थान पर ख्याल, टप्पा जैसी नवीन शैलियों को प्रचारित–प्रसारित कर दिया।

मुगल सम्राट अहमदशाह के दरबार में 'सुरभावन' और आलम ध्रुवपदकार हुए। 1797ई0 में शाह आलम का शासन आरम्भ होता है। शाहआलम भी अत्यन्त संगीत प्रेमी शासक था। उसने स्वयं एक गेय काव्य संग्रह की रचना 'नादिरातिशाही' नाम से की थी। इसी समय दक्षिण के प्रसिद्ध संत संगीतज्ञ त्यागराज का जन्म हुआ।

अंतिम मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर कुशल शायर एवं सहृदय व्यक्ति था। वह 'संगीत' द्वारा जीवन में प्रेरणा लेता रहा। इनके राज्यकाल में संगीत के लिये उपर्युक्त परिस्थितियां नहीं थी और

परिणाम स्वरूप दरबार में संगीत का अनुशीलन लगभग बन्द हो गया था। राज्य की दयनीय दशा के कारण दिल्ली के अधिकांश कलाकार देश की विभिन्न रियासतों में चले गये जहॉ नवाबों एवं राजाओं ने इन संगीतज्ञों को आश्रय प्रदान किया।

- **संगीत–ग्रन्थों की रचना** – पूर्व–मध्यकाल मे रचित ग्रन्थो संगीत मकरन्द, गीत–गोविन्द आदि के अतिरिक्त उत्तर–मध्यकाल मे भी अनेक महत्वपूर्ण संगीत ग्रन्थों की रचना हुई जिनमें निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय है :–

1. शारंगदेव कृत संगीत–रत्नाकर
2. लोचन कृत रागतरंगिणी
3. कल्लिनाथकृत संगीत–रत्नाकर की टीका
4. रामामात्यकृत स्वरमेलकलानिधि
5. पुण्डरीकविट्ठलकृत सद्रागचन्द्रोदय
6. रागमाला
7. रागमंजरी
8. नर्तननिर्णय
9. सोमनाथकृत राग–विबोध
10. पं0 दामोदर कृत संगीतदर्पण
11. व्यंकटमुखीकृत चतुर्दन्डिप्रकाशिका
12. पं0 अहोबलकृत संगीत–पारिजात
13. हृदयनारायणदेवकृत हृदय–कौतुक और हृदय–प्रकाश
14. पं0 श्रीनिवासकृत राग–तत्व–विवोध
15. पं0 तुलाजीराव भोंसले कृत संगीत–सारामृत और राग–लक्षणम्
16. भावभट्टकृत अनूप–विलास, अनुप प्रकाश और अनूप संगीत रत्नाकर आदि।

इस युग ने भारतीय संगीत को भक्ति–संगीत के एक अनुपम भण्डार से समृद्ध किया। कबीर, सूर, तुलसी और मीरा के पद, भजन और गीत भारतीय संगीत की अमूल्य निधि है।

मुगल–शासन काल में संगीत के शास्त्र एवं क्रियात्मक पक्ष दोनो समृद्ध हुए। जहॉ लोचन, रामामात्य, सोमनाथ एवं पं0 अहोबल आदि संगीत–शास्त्रकारों ने अपने संगीत–शास्त्र–ग्रन्थो में भारतीय संगीत के शास्त्र–पक्ष को समृद्ध किया वहीं स्वामी हरिदास, तानसेन, नायक बैजू नायक गोपाल, नायक बख्श, विलास खॉ, लाल खॉ, छतर खॉ, दिरंग खॉ, सदारंग, अदारंग, मुहम्मदशाह रंगीले एवं हिन्दी के भक्ति–संगीत गायकों सूर, तुलसी, मीरा आदि ने भारतीय संगीत के क्रियात्मक पक्ष को पूर्ण समृद्धता प्रदान की।

इन्हीं कारणों से भारतीय संगीत के इतिहास मे मध्य–युग 'स्वर्ण–युग' के नाम से अभिहित किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

क) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1) मध्यकाल को कितने भागों में बॉट सकते हैं? उत्तर मध्यकाल के विषय में विस्तार से बताइये।
2) संगीत मकरन्द किसने लिखी तथा इस ग्रंथ में किन बातों का उल्लेख है? संक्षेप में बताइये।
3) संगीत रत्नाकर की रचना किसने की? संगीत रत्नाकर की विषय–वस्तु के विषय में विस्तार से वर्णन कीजिए।
4) अलाउद्दीन खिलजी का शासनकाल का समय क्या था व उसके दरबार में कौन–कौन संगीतज्ञ थे?
5) राग तरंगिणी पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
6) अकबर के समय में संगीत की उन्नति पर विस्तार से वर्णन कीजिए।
7) अकबर के शासनकाल में किन्हीं 2 प्रमुख संगीतज्ञों के विषय में बताइये।
8) संगीत पारिजात पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।

ख) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1) शारंगदेव के अनुसार कितने ग्राम राग होते हैं? बताइये।
2) मध्यकाल को हम कितने भागों में विभक्त कर सकते हैं?
3) भारत में मुसलमानों का आगमन पर चर्चा कीजिए।
4) संगीत मकरन्द के अनुसार रागों को कितने वर्गों में विभाजित किया जा सकता है? समझाइये।
5) अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल पर प्रकाश डालिए।
6) अमीर खुसरो ने किन वाद्यों का आविष्कार किया? बताइये।
7) टप्पा गायन शैली पर टिप्पणी लिखिए।

ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति :–

1. गीत गोविन्द की रचना पं0 जयदेव द्वारा .... शताब्दी में हुई।
2. राग तरंगिणी के अनुसार सम्पूर्ण रागों को कुल .... थाटों में बॉटा गया है।
3. राजा मानसिंह तोमर का राज्य काल सन् .... से .... था।
4. तानसेन .... गायकी के प्रसिद्ध गायक थे।
5. दरबारी कान्हड़ा .... द्वारा रचित राग है।
6. रामदासी मल्हार का आविष्कार .... ने किया।
7. चॉद खॉ का उपनाम .... था।
8. सन् .... में पं0 दामोदर मिश्र ने .... ग्रंथ लिखा।
9. ग्रंथ .... में प्रथम बार वीणा के तार पर .... स्वरों की स्थापना की गई है।
10. हृदय नारायण देव ने .... और .... ग्रंथ लिखे।
11. शोरी मियॉ ने .... का आविष्कार किया।

(घ) बहुविकल्पीय प्रश्न :–

(1) मुसलमान बनने से पूर्व तानसेन का नाम था –

(i) तानसेन चर्तुवेदी (ii) तन्ना द्विवेदी
(iii) तन्ना मिश्र (iv) तानसेन चौबे

(2) गणेश स्त्रोत किसके द्वारा रचित ग्रंथ है –

(i) रामदास (ii) तान तरंग
(iii) गोपाल (iv) तानसेन

(3) ख्याल का आविष्कार किया –

(i) विचित्र खॉ (ii) सुल्तान हुसेन शर्की
(iii) मोहम्मद शाह रंगीले (iv) पं0 अहोबल

(4) पुंडरीक विट्ठल की रचना का नाम है –

(i) नर्तन निर्णय (ii) मेद्य
(iii) राग तरंगिणी (iv) संगीत रत्नाकर

(5) वृन्द वादन का एक अन्य नाम –

(i) शौकत (ii) औकत
(iii) पंचवत (iv) नौबत

(6) शौकी को आनन्द खॉ की उपाधि किसने प्रदान की –

(i) शाहजहॉ (ii) जहॉगीर
(iii) अकबर (iv) अलाउद्दीन खिलजी

(7) 'राग विबोध' के रचनाकार –

(i) पं0 सोमनाथ (ii) पं0 दामोदर
(iii) पं0 गंगाधर (iv) पुॅडरीक बिट्ठल

(8) गुण समुद्र कहते हैं–

(i) विलास खॉ (ii) ताल खॉ
(iii) दिरग खॉ (iv) छत्र खॉ

(9) पं0 अहोबल द्वारा रचित पुस्तक –

(i) संगीत मकरन्द (ii) संगीत रत्नाकर
(iii) चर्तुदन्डिप्रकाशिका (iv) संगीत पारिजात

(10) अदारंग किसके दरबार मे संगीतज्ञ थे –

(i) मो0 खिलजी (ii) मो0 शाह रंगीले
(iii) सुल्तान हुसेन शर्की (iv) औरंगजेब

(11) प्रबंध काल कहलाता है –

(i) वैदिक काल (ii) आधुनिक काल
(iii) प्रागैतिहासिक काल (iv) मध्यकाल

5.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप भारतीय संगीत के मध्यकाल से परिचित हो चुके होंगे। भारतीय संगीत का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव मनोभावों का है। सभ्यता के प्रत्येक चरण में संगीत की सुमधुर स्वर–लहरी किसी न किसी रूप में विद्यमान होती रही है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न तथ्यों को जान चुके होंगे :–

- सामंतशाही ऐश्वर्य के प्रवेश के कारण संगीत अपनी मौलिक मर्यादा से हटकर श्रृंगार–प्रधान हो गया।
- मुस्लिम आक्रमणों के परिणामस्वरूप मुगल–सभ्यता के प्रभाव से भारतीय संगीत अपनी प्राचीनता को विस्मृत करते हुए एक नवीन रूप में विकसित होने लगा। परिणामतः भारतीय संगीत उत्तरी एवं दक्षिणी दो पद्धतियों में विभक्त हो गया।
- दक्षिण भारतीय संगीत अपने प्राचीन मौलिक रूप को अक्षुण रखते हुए उन्नति पथगामी होता रहा, जबकि उत्तर भारतीय संगीत मुस्लिम–संगीत के सम्पर्क में आकर नित–नवरूपों में विकसित होने लगा।
- मध्यकाल के पूर्वार्ध में प्रबन्ध–गायन प्रचलित था, इसी कारण से यह प्रबन्ध–काल भी कहलाता है।
- इस काल में ''संगीत–मकरंद'', ''गीत–गोविन्द'' एवं ''मानसोल्लास'' जैसे महत्वपूर्ण संगीत–ग्रन्थों की रचना हुई। सन् 1290 से 1320 के बीच अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में महान संगीतज्ञ शारंगदेव ने भारतीय संगीत के आधार एवं अमर ग्रन्थ ''संगीत–रत्नाकर'' की रचना की। रामामात्य कृत ''स्वरमेल कलानिधि'', पुण्डरीक विट्ठल ने ''सद्राग–चन्द्रोदय'',''रागमाला'',''रागमंजरी'' एवं ''नर्तन निर्णय'', सोमनाथ कृत ''राग–विबोध'', पं0 दामोदर कृत ''संगीत–दर्पण'', पण्डित अहोबल ने ''संगीत–पारिजात'' भी इसी काल में लिखी गई।
- जौनपुरी बादशाह सुल्तान हुसैन शर्की ने ख्याल–गायन का प्रचार किया।
- मुगल शहंशाह अकबर के शासनकाल में भारतीय संगीत अपने चरमोत्कर्ष पर पहुॅचा। अकबर के दरबार में तानसेन, नायक बैजू, तालरंग एवं गोपाल आदि प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। इस काल में ध्रुपद–गायन का अत्यधिक प्रचार था। इसी समय सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ बैजू बाबरा ने होरी गायन शैली का तथा धमार ताल का आविष्कार किया।
- मुगलकाल के बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले के समय में भी संगीत पुनः उन्नति की ओर अभिमुख हुआ। इसी समय पंजाब में गुलाम रसूल उर्फ शोरी मियां ने टप्पा जैसी लोचपूर्ण गायन–शैली का अविष्कार किया। त्रिवट, गज़ल एवं तराना जैसी गायन–शैलियॉ भी इसी काल में प्रचार में आयी।

इन्हीं कारणों से भारतीय संगीत के इतिहास मे मध्य–युग को 'स्वर्ण–युग' के नाम से अभिहित किया जाता है।

5.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति :–

1. 12वीं 2. 12 3. 1486 से 1516 4. ध्रुवपद
5. तानसेन 6. रामदास 7. शशि 8. 1625, संगीत दर्पण
9. स्वरमेलकलानिधि, 14 10. हृदयकौतुक, हृदयप्रकाश 11. टप्पा

(घ) बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1.(iii)तन्ना मिश्र 2. (iv)तानसेन 3. (ii) सुल्तान हुसेन शर्की
4. (iii)राग तरंगिणी 5. (iv)नौवत 6. (ii)जहांगीर
7. (i)पं0 सोमनाथ 8. (iii)दिरग खां 9. (iv)संगीत पारिजात
10. (ii) मो0 शाह रंगीले 11.(iv)मध्यकाल

5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जोशी, श्री उमेश, *भारतीय संगीत का इतिहास*, मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, द्वितीय संस्करण 1969।
2. परांजपे, शरच्चंद्र श्रीधर, *भारतीय संगीत का इतिहास*, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 1969(वैदिक काल से गुप्त काल तक)।
3. बृहस्पति आचार्य, *मुसलमान और भारतीय संगीत*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण, 1974।
4. जायसवाल, श्री राधेश्याम, *भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास*, वाराणसेय संस्कृत संस्थान, वाराणसी प्रथम संस्करण 1983।
5. शुक्ल, श्री हीरालाल, *आदिवासी संगीत*, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ गन्थ अकादमी, भोपाल, प्रथम संस्करण, 1986।
6. वर्मा, सुश्री रीता, *प्राचीन भारत का इतिहास*, बोहरा प्रकाशन जयपुर, प्रथम संस्करण, 1981।
7. शर्मा, डॉ0 स्वतंत्रा, *भारतीय संगीत का ऐतिहासिक विश्लेषण*, टी0एन0, भार्गव एण्ड संस, कटरा, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण– 1988।
8. श्रीवास्तव, सुश्री धर्मावती, *प्राचीन भारत में संगीत (वैदिक काल से गुप्तकाल तक)*, संशोधित संस्करण, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1967।
9. रानी, डॉ0 संध्या, *उ0प्र0 के रूहेलखण्ड क्षेत्र की संगीत परम्परा*, रामपुर रज़ा लाइब्रेरी, रामपुर (उ0प्र0)।
10. Bandopadhya Shripad, *The Music of India*, Tresure House of Books, Bombay, IIIrd edition, 1970.
11. Eathel Rosenthal, *The Story of Indian Music and its Instruments*, Oriental Books, New Delhi.
12. Pingle B.A., *History of Indian Music*, Indological Book House, Delhi, 1985.
13. Deva B.C, Indian Music, Indian Council for Cultural Relations, New Delhi, 1974.

5.7 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शर्मा, श्री भगवतशरण, *भारतीय संगीत का इतिहास*, संगीत मंदिर, खुर्जा, प्रथम संस्करण 1981।
2. श्रीवास्तव, श्री हरीश्चन्द्र, *राग परिचय भाग–3*, संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मलाका, इलाहाबाद।
3. परांजपे, शरच्चंद्र श्रीधर, *संगीत बोध*, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, द्वितीय संस्करण, 1980।

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मध्यकाल में लिखित किन्हीं तीन ग्रन्थों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत कीजिए।

इकाई 6 – आधुनिक काल

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 आधुनिक काल में संगीत
6.3.1 पूर्व आधुनिक काल
6.3.2 आधुनिक काल
6.4 सारांश
6.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.8 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रदर्शन कला–संगीत में स्नातकोत्तर, (एम0पी0ए0एम0–501) पाठ्यक्रम की छठी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप सौन्दर्यशास्त्र, रस व छन्द से परिचित हो चुके होंगे। आप यह भी जान चुके होंगे कि इनका भारतीय संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। आप संगीत के इतिहास के बारे में पढ़कर यह भी जान चुके होंगे कि भारतीय संगीत का इतिहास अनेक विविधताओं के होते हुए भी अत्यन्त समृद्धशाली रहा है। प्राचीन काल से मध्यकाल तक के भारतीय संगीत के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर यदि दृष्टिपात करने पर हम पायेंगे कि संगीत कला को विविध प्रकार के उतार–चढ़ावों से गुजरना पड़ा है।

प्रस्तुत इकाई में भारतीय संगीत के इतिहास के अन्तर्गत आधुनिक काल का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत है। आधुनिक काल के विभिन्न समय कालों में संगीत की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। संगीत विद्वानों द्वारा रचित, इस काल के ग्रन्थों का उल्लेख भी इस इकाई में किया गया है, जो आपके संगीत ज्ञान की वृद्धि में उत्प्रेरक का कार्य करेगा।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ चुके होंगे कि आधुनिक काल में भारतीय संगीत की स्थिति क्या थी और विद्वानों द्वारा संगीत के प्रचार–प्रसार के लिए क्या–क्या प्रयास किए गए। आप आधुनिक काल के संगीत विद्वानों व उनके द्वारा रचित ग्रन्थों के बारे में भी जान चुके होंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझ सकेंगे –

- पूर्व आधुनिक काल में संगीत के विषय में।
- आधुनिक काल में संगीत के विषय में।
- आधुनिक काल में रचित संगीत सम्बन्धी ग्रन्थों के विषय में।
- अवध एवं रामपुर के शासक नवाबों के संगीत प्रेम के सम्बंध में।
- पं0 विष्णुनारायण भातखण्डे एवं पं0 विष्णुदिगम्बर पलुस्कर के विषय में।
- वर्तमान समय में संगीत की स्थिति के संबंध में।

6.3 आधुनिक काल में संगीत

भारतीय संगीत में 1800 ईसवी से आज तक का समय आधुनिक काल के अन्तर्गत आता है। अध्ययन में सुविधा की दृष्टि से आधुनिक काल को दो भागों में बांटा जा सकता है।

आधुनिक काल

पूर्व आधुनिक काल
(1800 ई0 से 1900 ई0 तक)

आधुनिक काल
(1900 ई0 से वर्तमान तक)

<u>6.3.1 पूर्व आधुनिक काल (1800 ई0 से 1900 ई0 तक)</u> – भारत में विदेशी कम्पनियों के आगमन तथा मुगल शासन के अंत का प्रभाव भारतीय संगीत पर भी पड़ा। सन् 1750 से ही अंग्रेजों के काल का प्रवेश माना जा सकता है। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से फ्रॉसीसी तथा अंग्रेज भारतवर्ष पर अधिकार प्राप्त करने के प्रयत्न में लग गये। अंग्रेजों ने धीरे–धीरे करके देश पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया तथा यहॉ के शासक बन बैठे। उन्होंने अपने गुलाम देश के साहित्यिक तथा सांस्कृतिक उन्नति के लिये कुछ भी नहीं किया। उनका मुख्य ध्येय भारत पर शासन करना था। अंग्रेजों ने भारतीय संगीत को मात्र कोलाहल के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझा, वे इसे असभ्यों का संगीत मानते थे। अतः उन्होंने सदैव भारतीय संगीत की उपेक्षा की। वे न तो भारतीय संगीतज्ञों का सम्मान करते थे और न उन्हें कुछ प्रोत्साहन देते थे। वे अपनी संस्कृति के सामने भारतीय संस्कृति को हेय दृष्टि से देखते थे। संगीत का आश्रय केवल देशी राजाओं का दरबार रह गया था। इन देशी राजाओं में भी जो राजा पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में आ गये उन्होंने भी भारतीय संगीत को राज्याश्रय से बाहर कर दिया। परिणाम स्वरूप भारतीय संगीत ऐसे लोगो के हाथ में चला गया जो समाज में घृणित दृष्टि से देखे जाते थे। संगीत कला मात्र कुछ रियासतों मे ही सीमित हो गई। संगीतज्ञों की भी बुरी दशा थी, वे

केवल अपने सम्बन्धियों को और उस पर भी बड़ी मुश्किल से सिखाते थे। अन्य किसी बाहरी व्यक्ति का उनसे संगीत सीखना लगभग असंभव था। धीरे—धीरे संगीत समाज की कुलय स्त्रियों के हाथ में चला गया। समाज ऐसे व्यक्तियों से घृणा करता ही था, अतः संगीत से भी घृणा करने लगा। संगीत आमोद—प्रमोद का साधन हो गया, यहॉं तक कि सभ्य समाज में संगीत का नाम लेना पाप समझा जाने लगा।

आधुनिक काल के पूर्वाद्ध में मुगलकाल का अन्तिम सम्राट बहादुर शाह जफर था उसके उपरान्त संगीत का उत्कृष्ट स्वरूप हमें मुहम्मद शाह रंगीले के युग में मिलता है। मुहम्मद शाह संगीत में विशेष रूचि रखते थे। उन्होंने संगीत के प्रचार—प्रसार में अद्वितीय योगदान दिया, जिस कारण उसको 'रंगीला' के नाम से जाना जाता हैं। उनके काल में साहित्यकला और संगीत सभी को बहुत प्रोत्साहन मिला। इसी काल में ध्रुवपद, धमार का स्थान ख्याल, ठुमरी, दादरा, कव्वाली ने ले लिया था। वीणा जो प्राचीन वाद्य था, उसके स्थान पर नवीन वाद्य सितार का प्रचार हुआ।

मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात स्वंय को असुरक्षित एवं आरक्षित अनुभव करने के कारण विद्वानों एवं कलाकारों को दिल्ली छोडना पडा। निराश्रित होकर ये विद्वान एवं कलाकार भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जाकर बसने लगे। दिल्ली के विस्थापित अधिकतर कलाकारों को 'अवध' में आश्रय प्राप्त हुआ। अवध के शासक नबाव संगीत प्रेमी थे।

- **नवाब वाजिद अली शाह** — एक सहृदय, कलाप्रेमी एवं बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न शासक थे। संगीत प्रेम उन्हें विरासत में मिला था। वाजिद अली शाह के पिता नवाब अहमद अली शाह तथा दादा मुहम्मद अली शाह भी संगीत में रुचि रखते थे। इसी कारण उस समय अवध पूर्णरुपेण संगीतमय था। इसी संगीतमय वातावरण में वाजिद अली शाह का जन्म हुआ। संगीत जगत में इन्हे 'अख्तर पिया' के नाम से भी जाना जाता है। अपनी प्रजावत्सलता के कारण वह अभूतपूर्व लोकप्रिय थे। जिससे वह आम जनता द्वारा ''जाने आलम'' कहे जाते थे। वे स्वयं उच्चकोटि के गायक थे और 'अख्तर पिया' उपनाम से अनेक ठुमरी, ख्याल, सादरों की रचना भी की। 18 वर्ष की छोटी अवस्था से ही इन्होंने सांगीतिक रचनाओं का लेखन कार्य प्रारम्भ कर उसे आजीवन कायम रखा। इन रचनाओं में संगीत के शास्त्रपक्ष एवं क्रियात्मक पक्ष दोनों का ही वर्णन किया। इन्होंने उर्दू, फारसी, ब्रज भाषा में गद्य व पद्य में लगभग 100 से अधिक पुस्तकें लिखी। संगीत की विभिन्न शैलियों जैसे— ध्रुवपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, दादरा, सादरा, त्रिवट, चतुरंग, ग़ज़ल आदि सभी का विशद वर्णन किया है। इन रचनाओं की स्वरलिपियां उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि उस समय तक न तो स्वरलिपि पद्धति इजाद हुई थी और न ही ध्वन्यांकन की सुविधा थी। एक अनुमान के अनुसार वाजिद अली शाह के युग में स्वरलिपि की प्राचीन भारतीय पद्धति लुप्त हो गयी थी। इसे स्वयं वाजिद अली शाह ने नवीन रुप दिया जिसका पुनरुद्धार कालान्तर में संगीत के चतुर पंडित भातखण्डे ने किया। नवाब वाजिद अली शाह का संगीत जगत में सराहनीय योगदान रहा। इन्होंने संगीत के शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय विधाओं को भी पल्लवित किया व नृत्यकला की विशेष प्रगति हुयी ।

कालान्तर में अवध में राजनैतिक उथल—पुथल होने पर वहां के अधिकांश आश्रित कलाकार रामपुर रियासत में आ गये। संगीत की अमूल्य परम्परा की रक्षा करके उसे जीवित रखने के प्रति दृढ—संकल्प रामपुर रियासत के नवाबों का नाम संगीत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

- **नवाब सादुल्लाह खां** – मुगल दरबार के कुछ कलाकार रुहेला नबाव सादुल्लाह खां के आश्रय में आ गये । इनमें फिरोज खां ''अदारंग'', मेहन्दी हसन और करीम सेन जैसे कलाकार भी थे, जोकि स्थायी रुप से वही रहने लगे। ये तीनों कलाकार सेनिया घराने के प्रसिद्ध कलाकार थे।

  फिरोज खां ''अदारंग', ''सदारंग'' के भतीजे, दामाद एवं शिष्य थे। कुछ विद्वान ''अदारंग'' को नियामत खां ''सदारंग'' का पुत्र भी मानते हैं। इन्होंने अनेक ध्रुवपद, तरानों एवं ख्यालो की रचना की। इन्होंने ''फीरोजखानी तोडी'' नामक एक राग का प्रचलन किया। फीरोज खां ''अदारंग'' के शिष्य थे। मेंहदी सेन एक कुशल कलावन्त थे।

- **नवाब यूसुफ अली खां** – नबाव मुहम्मद सईद खां की मृत्यु के पश्चात इनके बडे पुत्र मुहम्मद यूसुफ अली खां ने 9 अप्रैल 1855 को रामपुर की सत्ता ग्रहण की। यह योग्य शासक और संगीत प्रेमी थे और स्वयं कविताओं की रचना भी किया करते थे। आपने अपना उपनाम ''नाज़िम'' रखा था।

  नवाब यूसुफ अली खां के समय में रामपुर–दरबार गुणियों का आश्रयस्थल बन गया था। सन 1857 के स्वत्रंता–संग्राम के पश्चात् दिल्ली और लखनऊ के दरबार समाप्त हो चुके थे। इस स्वतन्त्रता–संग्राम के समय रामपुर शान्त रहा, इसलिए विद्वानों, कलाकारों और शायरों आदि ने रामपुर–दरबार में आश्रय प्राप्त किया। नबाब यूसुफ अली खां के दरबार में अनेक संगीतज्ञ थे जिनमें उस्ताद बहादुर हुसैन खां, उस्ताद अमीर खां और उस्ताद रहीम खां प्रमुख थे। उस्ताद बहादुर हुसैन, उनके दामाद ध्रुवपद–गायक और बीनकार अमीर खां और उनके भाई रहीम खां, ये तीनों ही रामपुर–दरबार में आने से पहले वाजिद अली शाह के दरबारी कलाकार थे।

- **उस्ताद बहादुर हुसैन खां** – उस्ताद बहादुर हुसैन खां, प्यारे खां के भान्जे एवं दत्तक पुत्र थे। इनके मामा तथा धर्मपिता प्यारे खां ने इनको सुरसिंगार की शिक्षा दी। प्यारे खां ने ही सुरसिंगार नामक वाद्य का आविष्कार किया था। बहादुर हुसैन खां ने सैकडों तरानो एवं सरगमों की रचना की थी। इनकी बहुत सी बन्दिशें, तराने तथा सरगमें प्रसिद्ध हैं। ''सनदपिया''के नाम से जो ठुमरिया मिलती हैं, वे बहादुर हुसैन खां की रचनाओं पर ही आधारित हैं।

  रामपुर दरबार में आने से पूर्व बहादुर हुसैन खां वाजिद अली शाह के प्रिय कलाकार थे। वाजिद अली शाह ने खुश होकर इन्हें ''जियाउद्दौला'' की उपाधि से विभूषित किया था। नवाब कल्बे अली खां के छोटे भाई हैदर अली खां बहादुर हुसैन के प्रमुख शिष्य थे। यह महान विचारक, शायर, लेखक तथा सुरसिंगार–वादक थे। हैदर अली खां की तालीम पूर्ण हो जाने के पश्चात् बहादुर हुसैन खां ने स्वयं बजाना छोड़ दिया और कहां करते थे कि जिसे मेरी जवानी का सुरसिंगार सुनना हो, वह हैदर को सुन ले।

- **उस्ताद अमीर खां** – उमराव खां बीनकार के पुत्र थे तथा बहादुर हुसैन खां इनके ससुर थे। आप एक योग्य वीणावादक थे, किन्तु ध्रुवपद–गायन की ओर आपका ध्यान अधिक था। आपके एक मात्र पुत्र वजीर खां थे।

- **उस्ताद रहीम खां** – उमराव के पुत्र और अमीर खां के भाई थे। आपका जन्म बांदा में हुआ था। आपने संगीत की शिक्षा बहादुर हुसैन खां और अपने भाई अमीर खां से प्राप्त की थी। आप भी अपने भाई अमीर खां के समान ही एक उच्चकोटि के कलाकार थे। वास्तव में बहादुर हुसैन खां और अमीर खां ने ही रामपुर में रामपुर–सेनिया परम्परा की आधारशिला रखी। इनकी ध्रुवपद शैली और इनके वाद संगीत की शैली की कुछ ऐसी विशेषताएं थी, जो कि उनके संगीत में प्रत्यक्ष हो जाती थी। इनके संगीत की अद्‌भुत प्रेरणा ने रामपुर के संगीत को बहुत अधिक प्रोत्साहित किया।

- **नबाब कल्बे अली खां** – यह नबाब युसूफ अली खां के ज्येष्ठ पुत्र थे तथा पिता के मृत्यु के पश्चात् 21 अप्रैल 1865 को रामपुर के नबाब बने। नबाब कल्वे अली खां एक शिक्षाविद् और अरबी एवं फारसी के विद्वान थे। इनके पिता के दरबार में बहादुर हुसैन खां, अमीर खां, रहीम खां जैसी कलाकार थे। रियासत का वातावरण संगीतमय था, जिससे नबाब कल्बे अली खां की रूचि बचपन से ही संगीत के प्रति हो गई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने भी अपने पिता के समान संगीत के कलाकारों को आश्रय प्रदान किया।

  नवाब कल्बे अली खां के दरबार में बाकर अली खां, नन्हें खां, हैदर बख्श सारंगी वादक, कुदऊ सिंह पखावजी, मौधू खां, छिद्दा खां तबला वादक, काजिम अली खां, निसार अली खां, मुराद अली खां, रहीमउल्लाह खां, अजीमुल्लाह खां, मुन्दरू सारंगी वादक, अमीर अली शहनाई वादक तथा गायिकाएं बन्दीजान कानपुर वाली, अमानीजान (ख्याल और टप्पा गाने वाली), जद्दी गायिका, मम्मी गायिका, अल्लाह रखी, अब्बासी, अजीजन, अलीजान, दरोगा महबूबजान और नन्नी कलकत्ते वाली आदि ने आश्रय लिया। बहादुर हुसैन खां और रहीम खां तो वहां पहले से ही थे।

- **पं0 कुदऊ सिंह पखावजी** – पं0 कुदऊ सिंह पखावजी का जन्म सन् 1812 में बांदा में हुआ था। यह सुप्रसिद्व मृदंगााचार्य ईश्वरी प्रसाद उर्फ गुप्ते के सुपुत्र थे। इन्होंने मृदंग की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता एवं दादा पं0 भवानी प्रसाद मृदंगाचार्य से प्राप्त की थी। इनकी अल्पायु में ही इनके पिता एवं दादा का स्वर्गवास हो जाने के कारण इन्होंने पखावज की शिक्षा अपने पूर्वजों की शिष्य–परम्परा के भवानीदीन उर्फ दासजी, केवलकृष्ण, हीरालाल तथा मदनमोहन से भी प्राप्त की। इन सभी में श्रेष्ठतम भवानीदीन थे, जिनसे कुदऊसिंह ने प्रमुख रुप से पखावज की शिक्षा प्राप्त की थी। काफी समय तक रामपुर–दरबार में रहे। कुछ समय वहां रहकर ये महारानी लक्ष्मीबाई के आश्रय में आ गये। महारानी लक्ष्मीबाई ने इन्हे अपना अंग–रक्षक बना लिया। एक बार शिकार के समय इन्होंने महारानी लक्ष्मीबाई की शेर से रक्षा की थी, जिससे प्रसन्न होकर महारानी ने इन्हे ''सिंह'' की उपाधि दी थी। तभी से इन्हें कुदऊ प्रसाद से कुदऊ सिंह कहा जाने लगा। अन्त में यह महारानी लक्ष्मीबाई के स्वर्गवास के पश्चात दतिया–दरबार के राजाश्रय में रहे और कई दिनों तक दतिया में ही रहे।

  कुदऊ सिंह ने अपने वंश में अपने भाई पं0 रामप्रसाद, भतीजे गया प्रसाद एवं पौत्र पद्‌श्री पं0 अयोध्या प्रसाद को सम्पूर्ण तालीम दी, जोकि आज तक इनके परिवार में चली आ रही है। सन् 1907 में 95 वर्ष की अवस्था में इनका स्वर्गवास हुआ। मौधू खां, उस्ताद छिद्दा खां, उस्ताद काजिम अली खां, उस्ताद निसार अली खां, अब्बासी, दरोगा महबूब जान और नन्नी कलकत्ते वाली आदि संगीत कलाकार रामपुर–दरबार के आश्रय में रहे।

- **नवाब हैदर अली खां** – नबाव यूसुफ अली खां के छोटे पुत्र और नवाब कल्बे अली खां के छोटे भाई थे। नवाब हैदर अली खां स्वयं अच्छे कवि, संगीतज्ञ और कहानीकार थे। इन्होंने संगीत की शिक्षा बहादुर हुसैन खां, सादिक अली खां एवं बासत खां से प्राप्त की थी। इन्होंने सुर–सिंगार की शिक्षा बहादुर हुसैन खां से प्राप्त की थी। अपने संगीत–प्रेम तथा अथक परिश्रम के फलस्वरुप नवाब हैदर अली खां भी अपने गुरुओं के समान ही सुरसिंगार तथा वीणा के निपुण कलाकार हो गये।

भातखण्डे जी के संगीत–गुरु वजीर खां नवाब हैदर अली खां के शिष्य थे। नवाब हैदर अली खां के दूसरे प्रसिद्ध शिष्य इनके अपने ही पुत्र साहबजादा सआदत अली खां(छम्मन साहब) थे, जिन्होंने भातखण्डे जी को रामपुर–परम्परा के रहस्य समझाये। नवाब हैदर अली खां को संगीत सीखने के लिए अत्यन्त कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उस समय के उस्ताद अपनी संगीत–विद्या को अत्यन्त गोपनीय रखते थे और वे अपनी विद्या अपने पुत्र अथवा वंशज को ही सिखाते थे। वे हर किसी को यह विद्या आसानी से नहीं देते थे। नवाब हैदर अली खां ने अथक प्रयत्न से इन उस्तादों से संगीत की शिक्षा ग्रहण करके संगीत को सर्वसुलभ कर दिया। आपने अपनी सन्तान को भी संगीत–विद्या के प्रचार–प्रसार की प्रेरणा प्रदान की।

- **साहबजादा सआदत अली खां ''छम्मन साहब''**– नवाब हैदर अली खां के पुत्र साहबजादा सआदत अली खां ''छम्मन साहब'' उत्कृष्ट कलाकार थे। इनका जन्म सन् 1778 ई0 में हुआ था। नवाब हैदर अली खां ने इन्हें सुरसिंगार–वादन की शिक्षा प्रदान की थी। हैदर अली खां की मृत्यु के पश्चात् इन्होंने उस्ताद बासत खां के पुत्र उस्ताद मुहम्मद अली खां से संगीत की शिक्षा ग्रहण की। ''छम्मन साहब'' एक कुशल रचनाकार भी थे। ''क्रमिक पुस्तक मालिका'' में ''सादत'' नाम से अंकित रचनायें इन्हीं के द्वारा रचित हैं। इन्होंने ''फलसफ–ए–मूसिकी, रहनुमाएं हारमोनियम संगीत ग्रन्थों की रचना की।

पं0 विष्णुनारायण भातखण्डे के संगीत–उद्धार के भगीरथ प्रयत्नों में छम्मन साहब का विशेष योगदान रहा था। पं0 भातखण्डे छम्मन साहब के मित्र और शिष्य दोनों ही थे। छम्मन साहब ने बड़ी उदारतापूर्वक अपनी चीजें व रागों के रूप भातखण्डे जी को सिखाए। छम्मन साहब के छोटे भाई अशफाक उल्ला खां उर्फ भाई जानी साहब भी संगीत प्रेमी व कलाकार थे। उन्होंने 'नगमातुल हिन्द' की रचना की।

- **भैया गनपतराव** – नवाब हैदर अली खां के शासनकाल में ग्वालियर नरेश के पुत्र भैया गनपतराय अतिथि कलाकार के रूप में रामपुर रिसायत में रहे थे। भैया गनपतराव स्वयं गुणी और उत्कृष्ट कोटि के हारमोनियम वादक थे। इन्होंने संगीत की शिक्षा अनेक उस्तादों से ग्रहण की थी, जिनमें सितार–वादन की शिक्षा इन्होंने उस्ताद बन्दे अली खां से प्राप्त की थी। सितार की शिक्षा लेने के उपरान्त इन्होंने उस्ताद सादिक खां से ठुमरी एवं टप्पा–गायन की शिक्षा ली। ठुमरी के प्रसार में भैया गनपतराव की चर्चा न करना इस युग–पुरूष के प्रति कृतघ्नता ही होगी। भैया साहब ने अनेक ठुमरियां खुद भी बांधी। मशहूर और मारूक मौजउद्दीन खां साहब भैया गनपतराव के ही शिष्य थे। गौहरजान, बशीर खां, गफूर खां, बाबू श्यामलाल, सोनी बाबू और मीर साहब भी भैया साहब के ही शिष्य थे।

- **नवाब हामिद अली खां** – आप नवाब मुहम्मद मुश्ताक अली के पुत्र थे। इनका जन्म सन् 1875 ई0 में हुआ था। इनके पिता का 32 वर्ष की अल्पायु में ही देहावसान हो गया था। इस कारण इनका शासनकाल भी मात्र दो वर्ष की अल्पावधि का था। पिता की मृत्यु के पश्चात् मात्र 14 वर्ष की आयु में ही हामिद अली खां रामपुर के नवाब बने। इन्हें प्रारम्भ से ही संगीत के प्रति विशेष अनुराग था। संगीत–प्रेम इन्हें अपने पारिवारिक वातावरण से ही मिला हुआ था। बचपन में इन्होंने अपने दादा नवाब हैदर अली खां से संगीत की शिक्षा प्राप्त की। उस्ताद इनायत खां (डागर बन्धुओं के नाना) भी इनके गुरू थे। बाद में नवाब हामिद अली खां, उस्ताद वजीर खां और उस्ताद मुहम्मद अली खां के शिष्य बने। आप ध्रुवपद–गायन, पखावज, तबला एवं नृत्य में पूर्ण पारंगत थे।

पं0 विष्णुनारायण भातखण्डे, उस्ताद मुश्ताक हुसैन खां, अच्छन महाराज तथा उस्ताद अजीम खां आदि सुप्रसिद्ध कलाकार नवाब हामिद अली के गण्डाबन्ध शिष्य थे। इनका दरबार विद्वान एवं गुणी कलाकारों का आश्रय स्थल था। इनके दरबार में **उस्ताद वजीर खां, उस्ताद हैदर खां, पं0 गया प्रसाद, अच्छन महाराज, लच्छु महाराज, उ0 मुहम्मद अली खां, पद्मश्री पं0 अयोध्या प्रसाद, उस्ताद फिदा हुसैन खां सरोदिये, उस्ताद अजीम खां, उस्ताद नत्थू खां, उस्ताद करीम सेन खां, उस्ताद बुन्दा खां, काले नजीर खां, वहीद खां, रजा हुसैन, गफूर खां तथा मुहम्मद हुसैन** आदि कलाकार थे।

- **नवाब रज़ा अली खां** – आप नवाब हामिद खां के पुत्र थे। नवाब रज़ा अली खां स्वयं भी एक संगीतप्रेमी नवाब थे। आपने अपने पिता नवाब हामिद अली खां के शासनकाल के कलाकारों के साथ ही साथ कुछ अन्य संगीतज्ञों को भी राजाश्रय प्रदान किया। इन्होंने ''संगीत–सागर'' नामक पुस्तक की रचना की, जिसमें संगीत सम्बन्धी चर्चा के साथ–साथ रस्मी गीतों को भी शामिल किया गया है।

नवाब हामिद अली खां के दरबार के गुणियों में से मुश्ताक हुसैन खां, अच्छन महाराज, लच्छू महाराज, पं0 अयोध्या प्रसाद तथा वहीद खां आदि नवाब रज़ा अली खां के दरबार में भी रहे। पटना के मुहम्मद रजा ने 'नगमाते आसफी' नामक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने तत्कालीन राग–रागिनी पद्धति के चार मतों–शिवमत, कल्लिनाथ मत, भरत मत और हनुमान मत का खंडन किया और अपना एक नवीन मत छः राग–छत्तीस रागिनियों का बनाया। उनकी पुस्तक की दूसरी विशेषता यह थी कि उसमें काफी थाट के स्थान पर बिलावल को शुद्ध थाट माना गया है। जयपुर के राजा प्रतापसिंह देव ने ''संगीत सार'' नामक पुस्तक लिखी, जिसमें उन्होंने भी शुद्ध थाट बिलावल माना। कृष्णानन्द व्यास ने 'संगीत राग कल्पद्रुम' में उस समय के प्रचलित ध्रुपद, ख्याल आदि का संग्रह किया, किन्तु बिना स्वरलिपि के केवल शब्द बेकार हैं।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में संगीत के कई ग्रंथ लिखे गये। बंगाल के सर एस0 एम0 टैगोर ने "The Universal History of Music" नामक ग्रंथ लिखा। इसी काल में रवीन्द्र नाथ टैगोर ने बंगाल के संगीत को एक नया रूप दिया। इसे रवीन्द्र संगीत कहा जाता हे। यह आज उत्तरी तथा दक्षिणी संगीत की तरह एक भाग है। रवीन्द्र नाथ ठाकुर बंगाल के एक प्रसिद्ध कवि थे एवं एक नाट्यकार, उपन्यासकार, संगीतकार, गायक, चित्रकार आदि थे। रवीन्द्र संगीत में पद, छंद, लय, ताल, राग, भाव, काव्य आदि का सुन्दर प्रयोग किया गया है। रवीन्द्र संगीत में शब्द तथा स्वर का ऐसा मेल हुआ है कि इस संगीत को अर्द्धनारीश्वर के रूप में देखा गया है। रवीन्द्र संगीत का आधार उत्तरी शास्त्रीय संगीत रहा है। रवीन्द्रनाथ ने ध्रुपद, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, बाउल, भटियाली, कीर्तन आदि को मिलाकर यह संगीत बनाया। इसी आधार पर ध्रुपदांग, टप्पांग, ख्यालांग, कीर्तनांग आदि का वर्णन

किया। रवीन्द्र नाथ जी शास्त्रीय संगीत के कठोर नियमों के विरोधी थे। उनके अनुसार नियम होने चाहिये परन्तु इतनी कठोरता से लागू करना ठीक नहीं है, इससे नई सृष्टि नहीं हो सकती। इसी आधार पर उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल पर संगीत की एक नई विधा की सृष्टि की। जिसे 'रवीन्द्र संगीत' के नाम से जाना जाता है। यह संगीत इतना लोकप्रिय हो गया कि इसका प्रसार पूरे देश तथा विदेशों में भी हुआ।

इसी काल में कैप्टन एन0ए0विलयर्ड ने A Treatise on the music of Hindustan नाम से पुस्तक लिखी। इन्हीं के अथक प्रयासों से कई यूरोपियनों ने भारतीय संगीत का अध्ययन किया तथा उसका प्रचार विदेशों में किया। इसी काल में घराना परम्परा का पूर्ण विकास हो चुका था, जिसके फायदे तथा नुकसान दोनों ही थे।

6.3.2 आधुनिक काल(1900 ई0 से वर्तमान तक) – उन्नीसवीं शताब्दी से इस काल का प्रारम्भ माना जाता है। इस काल में ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित हो जाने से भारतवासी पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में जकडे जा रहे थे। संगीत पर अशिक्षित वर्ग का पूर्ण अधिकार हो गया था। संगीत में विलासिता भी पूर्ण रुप से प्रवेश कर रही थी और संगीत समाज के निम्न वर्ग के व्यवसायिक लोगों के हाथ की कठपुतली बन कर रह गया था। संगीत को केवल विलासप्रियता का साधन मात्र समझा जाने लगा था। किन्तु ऐसी विषम परिस्थितियों में 19वीं शताब्दी के मध्य में ही संगीत जगत में पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे तथा पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर दो महान् विभूतियों का पदार्पण हुआ।

- **पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर** का जन्म 18 अगस्त सन् 1872 में महाराष्ट्र में हुआ। पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने जिस समय संगीत जगत् में पदार्पण किया तब संगीत व संगीतकारों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। शास्त्रीय संगीत का स्तर धीरे–धीरे गिरता चला जा रहा था। सभ्य वर्ग में संगीत वर्जित सा हो चुका था, ऐसे में पण्डित जी ने महसूस किया कि संगीत की और संगीतकारों को वह मान–सम्मान नहीं मिल रहा जिसके की वे अधिकारी हैं। तब उन्होंने संगीत का प्रचार–प्रसार समाज के सभी वर्गों में समान रूप से करने का निश्चय किया।

सर्वप्रथम 5 मई 1901 ई0 को लाहौर में पं0 पलुस्कर ने 'गान्धर्व महाविद्यालय' की स्थापना की। इसके उपरान्त मुम्बई, दिल्ली, पटना आदि शहरों में भी 'गान्धर्व महाविद्यालय' स्थापित किये गये। पं0 पलुस्कर जी ने पाठ्य–पुस्तकों के अभाव की पूर्ति हेतु लगभग 60 पुस्तकों का प्रकाशन किया था। 'संगीत बाल–बोध (5 भागों में), राग–प्रवेश (20 भागों में), भजनामृत–लहरी (5 भागों में), स्वल्पालाप–गायन, संगीत–तत्व–दर्शक आदि उल्लेखनीय हैं। भक्ति रस का संचार करने हेतु मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास नामक आदि के भक्ति रस प्रधान पदों को बन्दिशों में संयोजित किया। संगीत को सुलभता प्रदान करने के लिए एक स्वरलिपि का भी निर्माण किया। उक्त स्वरलिपि पद्धति, पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति एवं वैदिक स्वरलिपि पद्धति दोनों के गुणों को लेकर ओतप्रोत थी। इस स्वरलिपि पद्धति से काफी हद तक भारतीय शास्त्रीय संगीत को संरक्षण मिला। पं0 दिगम्बर जी की स्वरलिपि पद्धति का प्रचार दक्षिण संगीत पद्धति में अत्यधिक है।

पं0 पलुस्कर ने अनेक शिष्य भी तैयार किये जिन्होंने संगीत के क्षेत्र में अपनी अमिट छाप छोड़ी। पं0 ओंकारनाथ ठाकुर, विनायक राव पटवर्धन, नारायण राव व्यास आदि आपके प्रमुख शिष्यों में से हैं। पं0 पलुस्कर और उनके शिष्यों ने जहॉं संगीत के क्रियात्मक पक्ष को बढ़ावा दिया वहॉं साथ ही साथ शास्त्र पक्ष को भी समाज में प्रवाहित करने का सफल एवं सतत् प्रयास किया। स्वयं पं0 जी

ने कुछ सांगीतिक ग्रन्थों की रचना करके भारतीय शास्त्रीय संगीत को समृद्ध बनाने तथा उसके स्तर को ऊपर उठाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। आपके शिष्य विनायक राव पटवर्धन जी ने 'नाट्य संगीत प्रकाश', 'महाराष्ट्र संगीत प्रकाश', 'राग विज्ञान', 'बाल–संगीत', 'माझे गुरू चरित्र' आदि कई पुस्तकें संगीत के शैक्षणिक दृष्टिकोण से लिखी और 1952 ई0 में विष्णु दिगम्बर संगीत विद्यालय की स्थापना की।

- **पं0 विष्णुनारायण भातखण्डे** ने भी संगीत के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने अत्यन्त ही सरल एवं सुबोधगामी स्वरलिपि–पद्धति का आविष्कार किया, जोकि आज अत्यन्त लोकप्रिय है। उन्होंने लक्षण–गीत नामक नवीन गायन शैली की रचना की, जिसमें राग का नाम, स्वरूप, आरोह–अवरोह एवं जाति आदि अनेक विशेषताएं दी जाती हैं। पं0 भातखण्डे जी ने संगीत कला को शास्त्रीय आधार प्रदान करके उसे उच्चस्तरीय स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने विभिन्न घरानों और प्रतिष्ठित गायकों को सुनकर, उनकी स्वरलिपि तैयार करके उसे उच्चस्तरीय रूप प्रदान किया। उसका संकलित रूप ''क्रमिक पुस्तक मालिका'' के रूप में प्रकाशित कराया। उन्होंने मेल वर्गीकरण के स्थान पर थाट पद्धति विकसित करके नियमबद्ध प्रणाली से गायन वादन की प्रेरणा दी। उन्होंने संगीत शिक्षा प्रदान करने हेतु अनेक स्थानों पर संगीत–विद्यालयों की भी स्थापना की।

पं0 भातखण्डे द्वारा रचित स्वरलिपि इस समय में अत्याधिक प्रचलित है। संगीत के विद्यार्थियों के लिए तो यह पद्धति वरदान सिद्ध हुई है। उक्त स्वरलिपि के माध्यम से संगीत को जानना और समझना दोनों ही आसान हो गया। आज समस्त भारत में पं0 भातखण्डे द्वारा अविष्कृत ''स्वरलिपि पद्धति विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में प्रचलित हुई है। पं0 भातखण्डे जी ने ''थाट राग पद्धति'' का निर्माण किया। 72 थाटों में से दस थाट चुनकर, अव्यवस्थित रागों को स्थिरता प्रदान की। आज भी भातखण्डे जी की थाट पद्धति को ही प्राथमिकता मिल रही है। पं0 भातखण्डे ने ही संगीत को घरानों के संकुचित दायरों से बाहर निकाला और कई सांगतिक विद्यालयों की स्थापना की। लखनऊ में ''मैरिस म्यूजिक कालिज'' जो कि अब ''भातखण्डे संगीत संस्थान सम विश्वविद्यालय, लखनऊ' के नाम से प्रसिद्व है, कि स्थापना की। आपने ''माधव संगीत विद्यालय ग्वालियर, भातखण्डे संगीत विद्यापीठ लखनऊ, बडौदा म्यूजिक कालेज की स्थापना की। पं0 जी ने संगीत के प्रचार–प्रसार हेतु कई जगह संगीत सम्मेलनों का आयोजन भी किया। सन 1916 में बडौदा की प्रथम अखिल भारतीय संगीत परिषद, दूसरी सन 1918 में दिल्ली में, तीसरी बनारस में 1919 में, चौथी 1924 तथा पॉचवी 1925 में लखनऊ में आयोजित की गयी। संगीत के उच्च कोटि के बडे–बडे विद्वानों व गुणी उस्तादों द्वारा गम्भीरतापूर्वक चर्चा व विचार विनिमय इन परिषदों में हुआ। भातखण्डे ने क्रमिक पुस्तक माला (6 भागों), भातखण्डे–संगीत–शास्त्र (4 भागों), लक्ष्य संगीत, अभिनव राग–मंजरी आदि ग्रन्थों की रचना की।

- **उस्ताद अलाउद्दीन खां** – उस्ताद अलाउददीन खां की संगीत क्षेत्र में महान देन है। आप को संगीत सीखने के लिए कई मुश्किलों का सामना करना पडा परन्तु इसमें आपकी जिज्ञासा कम नहीं हुई। आपने गायन और वादन दोनों में ही कुशलता प्राप्त की। आपको राष्ट्रपति की ओर से पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किया गया। आपने संगीत के क्षेत्र मं उच्च कोटि के शिष्य तैयार किए जिनमें से पं0 रविशंकर, अन्नपूर्णा, उस्ताद अली अकबर खां, पं0 निखिल बैनर्जी का नाम उल्लेखनीय है।

- **पं0 ओंकारनाथ ठाकुर** – पण्डित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के सुयोग्य शिष्यों में पण्डित ओंकारनाथ जी ने संगीत जगत् पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। इनका गायन मनुष्य को ही नहीं अपितु वनस्पति को भी प्रभावित करता था। ठाकुर जी ने शास्त्रीय संगीत को जन–साधारण तक पहुँचाने के लिए अनेकानेक प्रयास किए। इनकी शिष्य परम्परा में जो नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है – श्रीमती एन0 राजम, डॉ0 कुमारी प्रेमलता शर्मा, शिव कुमार शुक्ल, पं0 कुंजलाल, पं0 रत्न लाल, पं0 पन्ना लाल मदन, श्री बलवन्त राय पुरोहित, श्री बलवन्त राय भट्ट, मास्टर बसन्त, मनोहर लाल सहजपाल आदि।

पण्डित जी लाहौर में गान्धर्व महाविद्यालय के प्रधानाचार्य भी रहे हैं। आप कुछ समय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस के प्राचार्य रहे। आपने आकाशवाणी के सलाहकार मण्डल के सदस्य के रूप में भी कार्य किया। भारत जब स्वतन्त्र हुआ तब उसकी पहली प्रभात को आकाशवाणी पर वन्देमातरम् प्रस्तुत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इनकी उत्कृष्ट कला का ही प्रमाण है कि इनको अनेक उपाधियों से अलंकृत किया गया। ''कलकत्ता संस्कृत विद्यालय'' ने आपके गुणों का सम्मान करने के लिए ''संगीत मार्तण्ड'' की उपाधि प्रदान की। सन् 1930 में नेपाल नरेश ने आपको ''संगीत महामहोपाध्याय'' की उपाधि से विभूषित किया। 1940 में ''राजकीय संस्कृत महाविद्यालय'' द्वारा ''संस्कृत मार्तण्ड'' की उपाधि मिली। 1943 में काशी विश्वविद्यालय द्वारा ''संगीत सम्राट'' की उपाधि मिली। 1955 में गणतन्त्र दिवस के अवसर पर इन्हें राष्ट्रपति द्वारा ''पद्मश्री'' की उपाधि से विभूषित किया गया। आपको भारत सरकार द्वारा ''पद्मविभूषण'' की उपाधि देकर भी सम्मानित किया गया।

संगीत के प्रचार–प्रसार हेतु आपने ''कला संगीत भारती'' नामक संस्थान का गठन बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा वाराणसी में किया। ''संगीत निकेतन संगीत शिक्षालय की स्थापना बम्बई में की। आज भी आपकी रिकार्डिग आकाशवाणी पर उपलब्ध है जो समय–समय पर प्रसारित होती रहती है और जिससे वास्तव में सांगीतिक जिज्ञासु लाभान्वित हो रहे हैं।

राजा नवाब अली ने उर्दू भाषा में संगीत की सुन्दर पुस्तक 'मारिफुन्नगमात' लिखी। 1911 में वे भातखंडे के संपर्क में आए तथा भातखंडे के विचारों से प्रभावित हो कर पुस्तक लिखी। आपने संगीत सम्मेलनों का आयोजन कर सार्वजनिक उत्साह बढ़ाया। भारतीय संगीत से गंदगी तथा अशुद्धता को दूर करने में महत्वपूर्ण साथ दिया।

इसी समय में राजा भैया पूँछवाले एवं बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर एक प्रसिद्ध गायक हुए हैं। इन्होंने संगीत के उत्थान में कई कार्य किए। इसी काल में प्रसिद्ध नृत्यकार उदयशंकर तथा रामगोपाल हुए। दोनों ने नृत्य को नए–नए परिर्वतनों से विकसित किया। नृत्य को विदेशों तथा सर्वसाधारण में लोकप्रिय किया। इसी समय दक्षिण भारत में सेमनगुडी श्री निवास अय्यर हुए। आपने संगीत को विकसित किया तथा उसकी आत्मिक पृष्ठभूमि को उत्कृष्ट बनाया।

इसी काल में अब्दुल करीम खां हुए जो प्रसिद्व गायक थे। आपने 'आर्य संगीत विद्या' की स्थापना 1913 में पूना में की। संगीत को लोकप्रिय बनाने हेतु अनेक संगीत समारोह किए तथा अनेक शिष्यों को संगीत सिखाया। इसी काल में प्रसिद्ध सुरबहार वादक उ0 इनायत खॉ हुए। सुरबहार के साथ–साथ सितार, ध्रुपद, ख्याल, सारंगी आदि में भी प्रवीण थे। आपने सितार वाद्य को प्रमुख रूप से अपना कर उसे लोकप्रिय बनाया। नृत्य के क्षेत्र में श्रीमति इन्द्रानी रहमान (भरतनाट्यम) तथा अनुराधा गुहा (कत्थक) का काफी योगदान रहा है।

उस्ताद विलायत खॉं सितार वादक रहे हैं। आपने सितार वाद्य में नई–नई चीजों को सम्मिलित किया और उसे लोकप्रिय किया। सितार में गायकी अंग का आप आज प्रतिनिधित्व करते हैं। उ0 अली अकबर श्रेष्ठ सरोद वादक हैं। इसी समय में प्रसिद्ध शहनाई वादक उ0 बिस्मिल्लाह खॉं हुए हैं। इसके अतिरिक्त पं0 वी0 जी0 जोग (वायलिन वादक), उ0 बड़े गुलाम अली खॉं (गायक), रूक्मणि अरूंडेल (नृत्य), विनायक राव पटवर्धन (गायक) आदि कलाकार हुए जिन्होंने संगीत के विकास में योगदान किया। उ0 अलाउद्दीन खां सर्वाधिक प्रसिद्ध संगीतज्ञ हुए हैं। आपने ''मैहर बैंड'' की स्थापना की तथा वाद्य वृंद को एक नई दिशा दी, आपने अनेक शिष्य तैयार किए जो आज संगीत क चमकते सितारे हैं, जैसे पं0 रविशंकर, उ0 अली अकबर खॉं, अन्नपूर्णा देवी आदि। पं0 रविशंकर सितार के श्रेष्ठ कलाकार हैं व आपने नृत्य, गायन, सितार सभी सीखे हैं। संगीत को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्रदान करने का श्रेय आपको जाता है। आपने नए–नए राग बनाए। आरकेस्ट्रा को भारतीय तथा पाश्चात्य वाद्यों से सजाया। पं0 सामता प्रसाद, पं0 किशन महाराज, उस्ताद अल्लारक्खा खां, उस्ताद ज़ाकिर हुसैन खां (तबला), नृत्यकार गोपीनाथ, नर्तकी मृणलिनी साराभाई आदि ने संगीत को विकसित किया।

दक्षिण में आर चन्द्रशेखरय्या, जा0 चन्नम्मा संगीतज्ञ हुए। इसके अतिरिक्त श्रीमती एम0एस0 सुबुलक्ष्मी ने संगीत को नया जीवन प्रदान किया।

भारतीय चित्रपट संगीत भी विकसित हुआ। कई संगीतकार इसमें सम्मिलित हुए। इनमें बंगाल के पंकज मलिक (संगीतज्ञ), गायक के0सी0डे0, गायिका कानन देवी, संगीतकार नौशाद, शंकर जयकिशन, नर्तक गोपीकृष्ण, लता मंगेशकर, गायिका सुरैया, नर्तकी सितारा देवी आदि। इन्होंने शास्त्रीय संगीत, लोकसंगीत, नृत्य आदि को जन साधारण में लोकप्रिय बनाया।

सरकार का ध्यान सांस्कृतिक धरोहर के रूप में भारतीय संगीत के उन्नयन की ओर भी गया तथा दूसरी ओर स्वतंत्र संस्थाओं की ओर से भी इस दिशा में पर्याप्त प्रयास हुए। इन दोनों के प्रयासों के फलस्वरूप समग्र भारत में संगीत उत्तरोत्तर उन्नति की दिशा में अग्रसर है। इन प्रयासों को संक्षेप में हम निम्नवत् देख सकते हैं।

वर्तमान समय में संगीत का प्रचार–प्रसार प्रत्येक वर्ग में समान है। शिक्षण संस्थाओं में संगीत को एक विषय के रूप में पढ़ाए जाने, लागू करने और इस विषय को अधिक से अधिक प्रोत्साहन देने हेतु सरकार द्वारा किए गए अनेक प्रयास प्रभावी सिद्ध हुए। शिक्षण संस्थाओं में इस विषय का समावेश होने से संगीत जिज्ञासुओं की गिनती बढ़ने लगी जिससे समाज के सभ्य वर्ग में भी संगीत के प्रति आकर्षण उत्पन्न हुआ।

सन् 1952 ई0 में भारत सरकार ने संगीत कला को प्रोत्साहन करने हेतु राष्ट्रपति पदक प्रदान करने आरम्भ किए। सन् 1953 में 'संगीत नाटक अकादमी' की स्थापना की तथा उसी क्रम में 1954 में 'ललित कला अकादमी' की स्थापना की। इन अकादमियों ने कलाकारों को उनकी कला का प्रदर्शन करने तथा समाज में यश कमाने का भी अवसर प्रदान किया। संगीत नाटक अकादमी समय–समय पर अनेक राष्ट्रीय स्तर के संगीत महोत्सवों का आयोजन करती रहती है। सरकार ने कलाकारों को मान–सम्मान प्रदान करने हेतु गत् वर्षों से अनेक पुरस्कार जैसे पद्मश्री, पद्मभूषण, पद्मविभूषण, तानसेन अवार्ड आदि देने भी प्रारम्भ किए हैं। सरकार के अनेक प्रयत्नों के कारण ही भारतीय कलाकारों तथा विदेशी कलाकारों के साथ कला प्रदर्शन से अन्य देशों से सांस्कृतिक सम्बन्ध सुदृढ़ होना संभव हो पाया है। सन् 1980–81 में हिन्दुस्तानी तथा कर्नाटकी संगीतकारों के एकत्रित रूप में कार्यक्रम हुए तथा इन कार्यक्रमों को दूरदर्शन द्वारा प्रसारित किया गया।

इस समय देश में संगीत प्रेमी समाज द्वारा स्थापित अनेक संगीत संस्थाएं हैं, जो अपने केन्द्रों के माध्यम से न केवल देश के कोने–कोने में अपितु विदेशों में भी शास्त्रीय संगीत की परीक्षा आयोजित करती है तथा क्रियात्मक संगीत–शिक्षण की व्यवस्था करती है। देश के कोने–कोने में पूर्व माध्यमिक से स्नातकोत्तर स्तर तक अनेक शिक्षण संस्थाएं हैं जो अपने पाठ्यक्रम में 'संगीत' विषय का समावेश कर एवं संगीत–शिक्षण–व्यवस्था कर शास्त्रीय संगीत का प्रचार–प्रसार कर रही हैं। आज देश में संगीत की अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है यथा 'संगीत' संगीत–कार्यालय, हाथरस, छायानट, संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ एवं 'संगीत–कला–विहार' मुम्बई से प्रकाशित आदि, जिनके माध्यम से देश में शास्त्रीय संगीत का प्रचार–प्रसार हो रहा है।

आज देश के कोने–कोने में अनेक प्रकाशन–संस्थाएं हैं जो संगीत–शास्त्र संबंधी ग्रन्थों का प्रकाशन कर शास्त्रीय संगीत के प्रचार–प्रसार में लगी हैं। संगीत पर केवल ग्रन्थ तथा पुस्तकें ही नहीं लिखी गयी हैं अपितु संगीत के विभिन्न पक्षों पर अन्य विषयों के समान पी–एच0डी0, डी0लिट्0 व स्तरीय शोध प्रबन्ध भी लिखे जा रहे हैं। जिससे संगीत की दिन प्रतिदिन उन्नति हो रही है।

संगीत के प्रचार एवं प्रसार में आकाशवाणी का विशेष योगदान रहा। प्रत्येक वर्ष आकाशवाणी की ओर से संगीत प्रतियोगिता का आयोजन करके तथा कुशाग्र बुद्धि वाले नवविद्यार्थियों जो मासिक छात्रवृत्ति देकर आने वाली संगीतज्ञों की पीढ़ी को बहुत कुछ प्रोत्साहित कर रही है। आकाशवाणी के स्तर को उच्च करने के लिए उसमें भाग लेने वाले कलाकारों की ध्वनि–परीक्षा सरकार द्वारा नियुक्त संगीतज्ञों का विशेषज्ञ पैनल लेती है और कलाकारों की श्रेणी तथा उनका पारिश्रमिक निर्धारित करती है। आकाशवाणी प्रतिवर्ष एक संगीत प्रतियोगिता और वृहद–संगीत सम्मेलन आयोजित करती है। सम्मेलन में संगीत सम्बन्धी विवादग्रस्त विषयों पर भी विचार–विमर्श होता है। 1953 में संगीत नाटक अकादमी स्थापित की गई और उच्च संगीत शिक्षा के लिए योग्य विद्यार्थियों को 300/– प्रतिमाह छात्रवृत्ति दी गई। प्रति शनिवार को साढ़े नौ बजे रात्रि से ग्यारह बजे रात्रि तक शास्त्रीय संगीत के विभिन्न कार्यक्रम आकाशवाणी द्वारा प्रसारित किये जाते हैं। विभिन्न केन्द्रों में गीत और भजन के रिकार्ड़ तैयार किये गये। दूसरी ओर चलचित्र संगीत ने शास्त्रीय संगीत का प्रचार तो नहीं किया, किन्तु भारत के प्रत्येक व्यक्ति के कानों में संगीत का थोड़ा अंश अवश्य पहुँचा दिया।

इस समय देश भर में अनेक संगीत संस्थाएं हैं जो संगीत की शिक्षा दे रही हैं। जैसे प्रयाग संगीत समिति इलाहाबाद, भातखण्डे संगीत कालेज लखनऊ, व्यास संगीत विद्यालय बम्बई, माधव संगीत विद्यालय ग्वालियर आदि। इसके अतिरिक्त इलाहाबाद, पटना, बनारस, कानपुर, नागपुर, काश्मीर, पंजाब, बड़ौदा विश्वविद्यालय में एम0ए0 के पाठ्यक्रम में संगीत का समावेश हो गया है। इधर संगीत की बहुत सी पुस्तकें शास्त्र और क्रियात्मक दोनों पर लिखी गई।

भारतीय संगीत की धाक विदेशों में जमाने के लिए उस्ताद विलायत खॉं, पं0 रविशंकर उस्ताद विलायत खॉं तथा अल्ला रक्खा खॉं का विशेष हाथ रहा है। इनके अतिरिक्त आधुनिक युग के कुछ संगीतज्ञों के नाम हैं सर्वश्री भीमसेन जोशी, पं0 निखिल बनर्जी, लालजी श्रीवास्तव, स्व0 गोपाल मिश्र, रघुनाथ सेठ, हरि प्रसार चौरसिया, शिव कुमार शर्मा, जाकिर हुसैन आदि। देश के बड़े–बड़े नगरों में प्रत्येक वर्ष उत्कृष्ट संगीत सम्मेलनों का आयोजन करना आवश्यक सा हो गया है। कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े–बड़े नगरों में एक वर्ष में कई–कई सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं। जिनमें साधारण जनता भी सुगमता से प्रवेश पा लेती है। इसके अतिरिक्त संगीत शास्त्र के प्रत्येक क्षेत्र में भी कई अच्छे विद्वान खोजपूर्ण कार्य कर रहे हैं जिनमें विद्यार्थी शोधार्थी लाभान्वित हो रहे हैं।

इसके अतिरिक्त संगीत अब एक विषय के रूप में पढ़ाया जाने लगा है। संगीत विषय में एम0ए0 की कक्षाओं एवं विश्वविद्यालयों द्वारा कराये जा रहे शोध कार्यों ने भी भारतीय शास्त्रीय संगीत के स्तर को बढ़ाया है। अनेक संगीत समारोह आयोजित किये जाते हैं, समय–समय पर संगीत विषय में सेमिनार होते रहते हैं जिससे शास्त्रीय संगीत को सर्वसाधारण तक पहुंचाया जा सकता है।

संगीत सम्मेलनों एवं सेमिनारों से संगीत के क्षेत्र को एक नई दिशा प्राप्त हुई है। भारतीय शास्त्रीय संगीत को जन साधारण तक पहॅुचाने में संगीत की मासिक, वार्षिक आदि पत्रिकाओं एवं आकाशवाणी ने भी अपना महत्वपूर्ण योगदान किया है। यही कारण है कि भारतीय संगीत आधुनिक काल में भारत जीवन का आवश्यक अंग बन गया है। भविष्य में संगीत अपनी सभी विशेषताओं के साथ संसार का मार्गदर्शन करने में मदद करेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भी सांस्कृतिक सम्बन्धों को सुदृढता प्रदान करने हेतु यूरोपीय एवं एशियाई देशों में सांस्कृतिक मण्डलों का आदान–प्रदान किया गया। राष्ट्रीय संगीत महोत्सव, नृत्य महोत्सव तथा संगीत सम्बन्धी गोष्ठियों का आयोजन केन्द्रीय, प्रान्तीय, सम्भागीय एवं मण्डलीय स्तरों पर होता रहता है।

संगीत के छात्रों को प्रोत्साहन प्रदान करने हेतु केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा विविध छात्रवृतियॉ प्रदान की जाती हैं। प्रारम्भ से लेकर उच्च शिक्षा तक संगीत एक विषय के रूप में पाठ्यक्रम में सम्मलित हो चुका है। अनेक शिक्षण संस्थायें आज संगीत की शिक्षा प्रदान कर रही हैं। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन द्वारा शास्त्रीय संगीत तथा सुगम संगीत के अन्तर्गत भजन, गीत व गजल आदि प्रसारित किये जाते हैं। आधुनिक युग में संगीत जनसाधारण के अत्यन्त निकट है। आज हमारा भारतीय संगीत पूर्णतः विकासोन्मुख है।

अभ्यास प्रश्न

क) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. भारतीय संगीत में आधुनिक कालीन संगीत को आप कितने भागों में बॉट सकते हैं? स्वतन्त्र भारत में संगीत की कुछ विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।
2. भारतीय संगीत के इतिहास के आधुनिक काल की विशेषतओं का उल्लेख कीजिए।
3. पूर्व आधुनिक काल में भारतीय संगीत की क्या स्थिति थी? विस्तार पूर्वक समझाइये।
4. पं0 रवीन्द्र नाथ टैगोर द्वारा भारतीय संगीत में किये गये योगदान को विस्तार पूर्वक समझाइये।
5. पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर एवं पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा संगीत की उन्नति के लिये किए गए प्रयासों की विस्तार पूर्वक व्याख्या कीजिए।
6. रामपुर नवाबों के काल में भारतीय संगीत की क्या स्थिति थी? विस्तार से लिखिए।

ख) लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. आधुनिक काल का समय कब से कब जक माना जाता है? संक्षेप में समझाइये।
2. पूर्व आधुनिक कालीन संगीत पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. रवीन्द्र संगीत से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में बताइये।
4. पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर द्वारा संगीत की उन्नति के लिये किये गये प्रयासों पर प्रकाश डालिये।
5. पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे का संगीत में क्या योगदान रहा?
6. स्वतन्त्र भारत में संगीत पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

ग) एक शब्द में उत्तर कीजिए :–

1. आधुनिक काल का समय क्या है?
2. पूर्व आधुनिक काल का समय क्या है?
3. सुरसिंगार नामक वाद्य का आविष्कारक कौन है?
4. पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे ने संगीत सम्बन्धी कौन–कौन सी पुस्तकें लिखीं?
5. पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी का जन्म कब हुआ?
6. आधुनिक काल में संगीत क विकास तथा प्रकार का श्रेय किन दो विभूतियों को जाता है?
7. भरतनाट्यम नृत्य में आधुनिक काल की किन महिला कलाकार का योगदान रहा?

घ) रिक्त स्थान भरिये :–

1. संगीत मार्तण्ड की उपाधि ....को दी गई।
2. बंगाल के सर एस0एम0टैगोर ने .... नामक ग्रन्थ लिखा।
3. उ0 इनायत खॉं प्रसिद्ध ....वादक थे।
4. कुमारी अनुराधा गुहा का .... नृत्य में काफी योगदान रहा।
5. नगमातुल हिन्द की रचना .... ने की।
6. गन्धर्व महाविद्यालय की स्थापना ....को .... में ....द्वारा की गई।
7. रवीन्द्र संगीत का आधार .... भारतीय संगीत रहा है।
8. राजा नबाब अली ने उर्दू भाषा में संगीत में संगीत की सुन्दर पुस्तक .... लिखी।
9. संगीत नाटक अकादमी की स्थापना सन् .... में की गई।

ड़) बहुविकल्पीय प्रश्न :–

(1) राजा प्रताप सिंह द्वारा लिखित पुस्तक –

(i) संगीत सार (ii) संगीत राग कल्पद्रुम
(iii) नगमाते आसफी (iv) संगीत बाल बोध

(2) राग कल्पद्रुम पुस्तक के रचयिता–

(i) पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे (ii) राजा प्रताप सिंह
(iii) कृष्णानन्द व्यास (iv) पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर

(3) रवीन्द्र नाथ टैगोर द्वारा संगीत को दिये गये नये रूप को कहते हैं –

(i) पाश्चात्य संगीत (ii) हिन्दुस्तानी संगीत
(iii) कर्नाटकी संगीत (iv) रवीन्द्र संगीत

(4) पं0 ओंमकार नाथ ठाकुर के गुरू थे –

(i) रवीन्द्र नाथ टैगोर (ii) पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे
(iii) कृष्णानन्द व्यास (iv) पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर

(5) 'आर्य संगीत विद्यालय' की स्थापना की –

(i) अब्दुल करीम खॉं (ii) राजा नबाव अली
(iii) विनायक राव पटवर्धन (iv) ओमकार नाथ ठाकुर

6.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप भारतीय संगीत के आधुनिक काल से परिचित हो चुके होंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न तथ्यों को जान चुके होंगे :–

- पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी व पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे जी ने संगीत के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।
- पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे ने अत्यन्त ही सरल एवं सुबोधगामी स्वरलिपि–पद्धति का आविष्कार किया, जोकि आज अत्यन्त लोकप्रिय है। उन्होंने लक्षण–गीत नामक नवीन गायन शैली की रचना की, उन्होंने मेल वर्गीकरण के स्थान पर थाट पद्धति विकसित करके नियमबद्ध प्रणाली से गायन वादन की प्रेरणा दी।
- आधुनिक काल के संगीत विद्वानों, उनके द्वारा रचित विभिन्न संगीत सम्बन्धी ग्रन्थों व उनके भारतीय संगीत में महत्वपूर्ण योगदान को।
- भारत सरकार ने संगीत को संरक्षण प्रदान किया। भारत सरकार ने संगीतकला को प्रोत्साहन प्रदान करने हेतु पद्मश्री, पदमभूषण एवं पदमविभूषण जैसे सम्माननीय राष्ट्रीय पदक प्रदान करने आरम्भ किये।
- संगीत के छात्रों को प्रोत्साहन प्रदान करने हेतु केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा विविध छात्रवृतियॉ प्रदान की जाती हैं।

6.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ग) एक शब्द में उत्तर दीजिए :–

1. 1900 ई0 से वर्तमान तक 2. 1800 ई0 से 1900 ई0 3. प्यारे खॉ

4. क्रमिक पुस्तक मालिका(6 भाग), भातखण्डे–संगीत–शास्त्र (4 भाग), श्रीमल्लक्ष्य संगीत, अभिनव राग–मंजरी

5. 18 अगस्त 1872 6. पं0 भातखण्डे व पं0 पलुस्कर 7. श्रीमती इन्द्राणी रहमान

घ) रिक्त स्थान भरिये :–

1. पं0 ओंमकारनाथ ठाकुर 2. The Universal History Of Music 3. सुरबहार

4. कत्थक 5. अश्फाक उल्ला 6. उत्तरी

7. 5 मई 1901, लाहौर, पं0 पलुस्कर 8. मारिफुन्नगमात 9. 1953

ड़) बहुविकल्पीय प्रश्न :–

1. (i) संगीत सार 2. (iii) कृष्णानन्द व्यास 3. (iv) रवीन्द्र संगीत

4. (iv) पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर 5. (i) अब्दुल करीम खॉ

6.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जोशी, श्री उमेश, *भारतीय संगीत का इतिहास*, मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, द्वितीय संस्करण 1969।
2. परांजपे, श्री शरच्चंद्र श्रीधर, *भारतीय संगीत का इतिहास*, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 1969(वैदिक काल से गुप्त काल तक)।
3. वृहस्पति आचार्य, *मुसलमान और भारतीय संगीत*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण, 1974।
4. जायसवाल, श्री राधेश्याम, *भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास*, वाराणसेय संस्कृत संस्थान, वाराणसी प्रथम संस्करण 1983।
5. शुक्ल, श्री हीरालाल, *आदिवासी संगीत*, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ गन्थ अकादमी, भोपाल, प्रथम संस्करण, 1986।
6. वर्मा, सुश्री रीता, *प्राचीन भारत का इतिहास*, बोहरा प्रकाशन जयपुर, प्रथम संस्करण, 1981।
7. शर्मा, डॉ0 स्वतंत्रा, *भारतीय संगीत का ऐतिहासिक विश्लेषण*, टी0एन0, भार्गव एण्ड संस, कटरा, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण— 1988।
8. श्रीवास्तव, सुश्री धर्मावती, *प्राचीन भारत में संगीत (वैदिक काल से गुप्तकाल तक)*, संशोधित संस्करण, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1967।
9. रानी, डॉ0 संध्या, *उ0प्र0 के रूहेलखण्ड क्षेत्र की संगीत परम्परा*, रामपुर रज़ा लाइब्रेरी, रामपुर (उ0प्र0)।
10. Bandopadhya Shripad, The Music of India, Tresure House of Books, Bombay, IIIrd edition, 1970.
11. Eathel Rosenthal, The Story of Indian Music and its Instruments, Oriental Books, New Delhi.
12. Pingle B.A., History of Indian Music, Indological Book House, Delhi, 1985.
13. Deva B.C, Indian Music, Indian Council for Cultural Relations, New Delhi, 1974.

6.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शर्मा, श्री भगवतशरण, *भारतीय संगीत का इतिहास*, संगीत मंदिर, खुर्जा, प्रथम संस्करण 1981।
2. श्रीवास्तव, श्री हरीश्चन्द्र, *राग परिचय भाग–3*, संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मलाका, इलाहाबाद।
3. परांजपे, शरच्चंद्र श्रीधर, *संगीत बोध*, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, द्वितीय संस्करण, 1980।

6.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आधुनिक काल में भारतीय संगीत में हुए परिवर्तन पर विस्तृत चर्चा कीजिए।